नई दिल्ली
रविवार, 22 फरवरी, 2026, मूल्य-15.00
राष्ट्रीय
वर्ष-8 अंक-19 पृष्ठ- 8
RNI: DELHIN / 2018 / 76679
Postal Reg. No. DL(C)-05/1425/2025-27
License To Post Without Pre Payment No. U(C)-164/2025-27
Magazine Post Reg. No. DL(DS)-31/MP/25-26-27

संडे नवजीवन

Freedom is in Peril; Defend it with all your might Jawaharlal Nehru

हिन्दुत्ववादियों के बांटो और राज करो अभियान से आजिज लोग अब खुलकर सामने आने लगे हैं 3
गंगा लेगी तारिक रहमान की परीक्षा 4

पंजाब की कबड्डी 8

www.navjivanindia.com | @navjivanindia | www.nationalheraldindia.com | www.qaumiawaz.com

एपस्टीन फाइल्स पर यूं ही नहीं भारत में हंगामा

फोटो: गेटी इमेजेज

उलझा मामला बाल यौन शोषण का आरोपी जेफरी एप्सटीन (ऊपर) से जुड़े सवालों के जवाबों से बुरे फंसे हरदीप पुरी

ए.जे. प्रबल के साथ वंशिका गुप्ता

जेफरी एपस्टीन ने करीब साढ़े छह साल पहले 66 साल की उम्र में न्यूयॉर्क की एक जेल में कथित तौर पर खुदकुशी कर ली थी। उसके घरों से जब्त पत्रों, तस्वीरों, लॉग और कागजात की वजह से वह अब भी खबरों में है। जितनी रहस्यमय जिंदगी, उतनी ही रहस्यमय मौत। कोई नहीं जानता कि उसने दौलत कैसे बनाई। इतना जरूर पता है कि उसपर सैकड़ों बच्चों के यौन शोषण का आरोप है, 500 से ज्यादा पीड़ितों की पहचान हो चुकी है जिनकी ट्रैफिकिंग की गई। 30 जनवरी 2026 को अमेरिका में नए कागजात जारी किए गए जिनमें कई भारतीयों का जिक्र है। इनमें दो तो खास हैं।

बदनाम एपस्टीन फाइल्स में भारत और भारतीयों का जिक्र भले हलचल मचा रहा हो, मजे की बात है कि ये जिक्र 2014 से शुरू होते हैं, जिस साल भाजपा सांसद कंगना रनौत के मुताबिक भारत आजाद हुआ था। 2014 के बाद एपस्टीन की भारत और भारतीयों में दिलचस्पी की क्या वजह थी, इसकी जांच बाकी है।

अमेरिकी न्याय विभाग द्वारा जारी मेल और कागजों में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी, पेट्रोलियम मंत्री हरदीप पुरी और उद्योगपति अनिल अंबानी का जिक्र मई 2014 में मोदी के प्रधानमंत्री पद की शपथ लेने से कुछ दिन पहले शुरू हुआ। 16 मई 2014 को नतीजे आने से कुछ दिन पहले एपस्टीन ने एक ईमेल में भारत आने की इच्छा जताई थी और 'जेटली और मोदी' का जिक्र किया था। साफ नहीं है कि वह इन दोनों को जानता था या नहीं। जवाब में उसे बताया गया कि उसे भारत आना रास नहीं आएगा और गर्मियों में नहीं आने की सलाह दी गई थी।

हरदीप पुरी की एपस्टीन के साथ बातचीत जून 2014 में शुरू हुई थी, मोदी के प्रधानमंत्री बनने के कुछ ही दिनों बाद और रिटायर्ड राजनयिक पुरी के जनवरी 2014 में भाजपा में शामिल होने के छह महीने बाद। फाइलों से पता चलता है कि पुरी और एपस्टीन 5 जून से 9 जून 2014 के बीच चार बार मिले थे। उसी साल 26 मई को मोदी ने प्रधानमंत्री पद की शपथ ली थी। अब तक जितनी बातें सामने आई हैं, उससे ऐसा लगता है कि सितंबर 2017 में मोदी कैबिनेट में मंत्री बनने के बाद पुरी का नाम फाइलों में नहीं है।

अपने व्यवहार का जोरदार बचाव करते हुए पुरी ने कहा है कि वह एक देशभक्त, दूर की सोचने वाले भारतीय के तौर पर एपस्टीन से मिल रहे थे, ताकि भारत में निवेश लाने में मदद मांग सकें। उनका दावा है कि 2014 में अपने मेल में उन्होंने 'डिजिटल इंडिया' और 'मेक इन इंडिया' का जिक्र किया। गौरतलब है कि ये स्कीम 2015 और 2016 में शुरू की गई थीं। हालांकि, उन्होंने यह नहीं बताया कि सितंबर 2017 में मंत्री बनने के बाद एपस्टीन के साथ उनकी बातचीत क्यों बंद हो गई। उनकी कोशिशों का कैबिनेट को क्या नतीजा मिला? एक 'निजी नागरिक' के तौर पर उनकी कोशिशों और एपस्टीन के जरिये कौन से निवेश आए?

पुरी ने सितंबर 2014 में एपस्टीन के ईमेल का जिक्र किया, जिसमें उन्हें लिंक्डइन के संस्थापक रीड हॉफमैन से मिलवाया गया था। 'रीड, हरदीप भारत में आपके आदमी हैं''। अक्तूबर में, एपस्टीन बैठक का नतीजा जानना चाहता है। पुरी जवाब देते हैं कि उन्हें सैन फ्रांसिस्को में हॉफमैन से मिलना है। पुरी पूछते हैं, ' मेरे दोस्त, तुम काम करवा देते हो। कोई सलाह?' हॉफमैन से बैठक के बाद भारत में डिजिटल पहल पर एक विस्तृत नोट भेजा, जिसमें हॉफमैन और एपस्टीन दोनों को मार्क किया गया था।

पवन खेड़ा ने पूछा है, 'तब पुरी एक पूर्व राजनयिक थे। वह किस हैसियत से हॉफमैन का भारत दौरा आयोजित कर रहे थे? क्या भारतीय दूतावास बंद हो गया था? क्या भारतीय राजदूत वहां नहीं थे? क्या विदेशमंत्री सुषमा स्वराज नहीं थीं? नरेन्द्र मोदी को हरदीप पुरी की सेवाओं की जरूरत क्यों पड़ी? मोदी को रीड हॉफमैन की यात्रा के लिए एपस्टीन की जरूरत क्यों पड़ी?'

पब्लिक डोमेन में ऐसा कुछ भी नहीं जिससे पता चले कि एपस्टीन कभी भारत आया था। अगर वह आता तो भारत और अमेरिका के इमिग्रेशन अधिकारियों को पता होता। अगर वह प्राइवेट जेट से आता तो सिविल एविएशन अधिकारियों को भी पता होता। न ही पब्लिक डोमेन में ऐसा कुछ है जिससे पता चले कि एपस्टीन ने कभी भारत में निवेश किया हो या यहां किसी के साथ गठजोड़ किया हो। इसके उलट, जब अनिल अंबानी ने लंदन कोर्ट में खुद को 'दिवालिया' घोषित करने के बाद 7 करोड़ जुटाने में उससे मदद मांगी, तो एपस्टीन ने जवाब दिया कि लोन मिलना मुश्किल होगा और उनके 'शेयर' शायद 'अच्छे' नहीं थे।

> एपस्टीन और अनिल अंबानी के बीच सबसे बुरी बातचीत में, एपस्टीन एक 'लंबी, स्वीडिश गोरी' औरत की सेवाएं ऑफर करता है। अंबानी जवाब में लिखते हैं, 'अरेंज करो'। यह सब क्या था? क्या उद्योगपति ने यह सेवा अपने लिए मांगी थी या फिर किसी और के लिए?

*

अब तक 35 लाख कागजात जारी किए गए हैं और 30 लाख जारी किए जाने हैं। फिर भी, अब तक के पेपर में भारत और भारतीयों के जिक्र ने हलचल मचा रखी है और तमाम असहज करने वाले सवाल उठ रहे हैं। राजनीतिक रूप से सबसे अहम संकेत तब आया जब एपस्टीन ने दावा किया कि उसने 'मोदी के आदमी' को बताया कि 2017 में भारतीय पीएम के पहले इसराइल दौरे के दौरान क्या करना है। एपस्टीन ने दावा किया कि उसने भारतीय पीएम को सुझाव दिया कि इसराइल में रहने के दौरान अमेरिकी राष्ट्रपति के पक्ष में जमकर बातें करें और इसके बारे में यह भी लिखा- 'यह काम कर गया'।

ये रहस्यमय संदेश तमाम सवाल खड़े करते हैं जिनका जवाब मिलना अभी बाकी है। जैसे, मोदी के इसराइल दौरे में एपस्टीन की क्या दिलचस्पी थी? वह किसके कहने पर भारत में नेताओं पर नजर रख रहा था? सीआईए और मोसाद के पूर्व अधिकारियों जैसे भरोसेमंद स्रोतों ने यह आरोप लगाए हैं कि वह अमेरिका और इसराइल दोनों में 'डीप स्टेट' का हिस्सा था, लेकिन इसकी पुष्टि जल्द होने की उम्मीद नहीं।

एक और ईमेल बातचीत में, एपस्टीन ने 'मिडिल ईस्ट' का जिक्र किया और कहा कि वह वहां के घटनाक्रम से खुश नहीं। बेशक संदर्भ अभी रहस्य बना हुआ है, लेकिन यह भी हैरान करने वाला है कि उसने अनिल अंबानी के साथ ऐसी बात क्यों की। इसकी शायद यही सही व्याख्या है कि वह चाहता था कि अनिल अंबानी उसके विचारों को भारतीय 'नेतृत्व' तक पहुंचाएं।

एपस्टीन को लगता था कि अंबानी भारतीय 'नेतृत्व' के करीब थे और वह उस समय स्टीव बैनन जैसे राष्ट्रपति ट्रंप के करीबी लोगों से मिलने की कोशिश उनके कहने पर ही कर रहे थे। अनिल अंबानी ने शायद यह दावा करके भारत में राजनीतिक सत्ता से अपनी नजदीकी दिखाने की कोशिश की होगी कि 'नेतृत्व' ने उन्हें पीएम मोदी के वाशिंगटन डीसी और व्हाइट हाउस दौरे को आसान बनाने और ट्रंप के दामाद जेरेड कुशनर से मिलने के लिए कहा है।

हरदीप पुरी के बेगुनाही के बड़े-बड़े दावों और टीवी चैनलों पर राहुल गांधी को बुरा-भला कहने और सच सामने लाने की कोशिशों ने उनकी छवि खराब कर दी है। चिड़चिड़े पुरी ने एक इंटरव्यू में सवाल किया, 'आतंकवादियों के संपर्क में रहने से क्या मैं आतंकवादी बन जाता हूं?' इसका क्या मतलब? उनपर किसी ने बच्चों के साथ यौन संबंध बनाने का आरोप तो लगाया नहीं है!

सरकार के चुप कराने से पहले, पुरी ने खुद को उलझन में डालने का अच्छा इंतजाम कर लिया था- उन्हें 'नहीं पता था कि एपस्टीन कौन है', 'उन्हें नहीं पता था कि वह किससे मिलने जा रहे हैं' इंटरनेशनल पीस इंस्टीट्यूट में उनके बॉस ने उन्हें एपस्टीन के पास भेजा था वह एक डेलीगेशन का हिस्सा थे वह एपस्टीन से सिर्फ तीन-चार बार मिले थे' भारत में इन्वेस्टमेंट के लिए पिचिंग और 'डिजिटल इंडिया को प्रमोट करने' के लिए। एपस्टीन का मैनहटन टाउन हाउस उनके बगल में था और वह आठ साल से न्यूयॉर्क में रह रहे थे यह सब प्रोफेशनल था एपस्टीन पर सिर्फ एक कम उम्र की लड़की के साथ सेक्स करने का आरोप था।

इनकार के बावजूद ईमेल से पता चल जाता है कि मंत्री जी कितनी जान-पहचान रखते हैं, जिसे मानने या समझाने को तैयार नहीं हैं। एक ईमेल में, पुरी ने लिखा, 'जब आप अपने अनोखे आइलैंड से वापस आ जाएं, प्लीज मुझे बता दें'। पुरी को उस अनोखे आइलैंड के बारे में पता कैसे चला? अगर तब तक उन्हें एपस्टीन के अतीत और 'पेडो आइलैंड' के बारे में पता चल चुका था तो क्या कोई आम, प्रोफेशनल जान-पहचान वाला उसका जिक्र करता? ऐसा कोई संकेत नहीं है कि पुरी कभी उस आइलैंड पर गए, लेकिन वह एपस्टीन के इतने करीब तो थे कि अन्य संदर्भ में उसका जिक्र कर सकें।

कई कागजात बताते हैं कि एक-दूसरे से 'प्रोफेशनली' मिलने के कुछ ही महीनों के अंदर, पुरी को एपस्टीन के घर पर अक्सर लंच या डिनर पर बुलाया जाने लगा था। जनवरी 2017 में, पुरी ने एपस्टीन को लिखा, 'अगर आप शहर में हैं, तो मैं आपको अपनी किताब, 'पेरिलस इंटरवेंशन्स' की एक कॉपी देने आना चाहता हूं।' उन्होंने मई 2017 में भी मिलने का अनुरोध किया। सितंबर 2017 में जब पुरी केन्द्रीय मंत्री बने तो संदर्भ और ट्रेल अचानक बंद हो गए।

*

एपस्टीन और अनिल अंबानी के बीच सबसे बुरी बातचीत में, एपस्टीन एक 'लंबी, स्वीडिश गोरी' औरत की सेवाएं ऑफर करते हैं। अंबानी जवाब में लिखते हैं, 'अरेंज करो'। यह सब क्या था? क्या उद्योगपति ने यह सेवा अपने लिए मांगी थी या फिर किसी और के लिए? अंबानी कुछ नहीं बोल रहे हैं, और भारत में उन्हें बोलने के लिए मजबूर करने वाला कानून नहीं। भारतीय जांच एजेंसियां इस मामले में शायद ही कोई जांच शुरू करेंगी, और विदेश मंत्रालय बेशक 'एक सजायाफ्ता की बकवास बातों' को उसी बेइज्जती के साथ खारिज कर देगा जिसके वे हकदार हैं। ■

दुस्साहस ठीक, पर पकड़े न जाएं तभी तक

गुरपतवंत सिंह पन्नू की हत्या की साजिश रचने का जुर्म कबूलने के भारत पर पड़ सकते हैं दूरगामी असर

आशीष रॉय

कबूलनामा गुरपतवंत पन्नू (इनसेट) की हत्या का जुर्म कबूल करने वाला ड्रग तस्कर निखिल गुप्ता

भारतीय कारोबारी और कथित ड्रग तस्कर निखिल गुप्ता ने अमेरिका में तीन मामलों में अपना जुर्म कबूल कर लिया है: 'भाड़े पर हत्या, भाड़े पर हत्या की साजिश और मनी लॉन्ड्रिंग की साजिश'। संदर्भ है न्यूयॉर्क में रहने वाले अमेरिकी नागरिक गुरपतवंत सिंह पन्नू की हत्या का प्रयास। पन्नू 'सिख्स फॉर जस्टिस' के जनरल काउंसल हैं। यह संस्था भारत से अलग आजाद 'खालिस्तान' देश की मांग करती है। गौरतलब है कि गुप्ता को 2023 में गिरफ्तार किया गया था और वह अभी न्यूयॉर्क में हिरासत में है।

भारत सरकार ने गुप्ता या विदेशी खुफिया एजेंसी रॉ के पूर्व कर्मचारी विकास यादव से किसी भी संबंध से इनकार किया है। गुप्ता ने कथित तौर पर बताया कि किसे निशाना बनाना है और इसके लिए अमेरिका में भाड़े के हत्यारे का इंतजाम करने के लिए पैसे उपलब्ध कराए।

अगर गुप्ता ने जुर्म कबूल नहीं किया होता, तो उन्हें आपराधिक ट्रायल का सामना करना पड़ता और उनके खिलाफ साक्ष्यों को सामने रखकर उन्हें दोषी सिद्ध किया जाता। गुप्ता के कबूलनामे के बाद अमेरिकी अटॉर्नी ऑफिस से जारी प्रेस नोट का बोल्ड में सब-टाइटल था: 'निखिल गुप्ता ने अमेरिका में मौजूद सिख अलगाववादी नेता की हत्या कराने का इंतजाम एक भारतीय सरकारी कर्मचारी के कहने पर किया।' एफबीआई के असिस्टेंट डायरेक्टर इन-चार्ज, जेम्स बार्नकल जूनियर के हवाले से कहा गया, 'एक भारतीय सरकारी कर्मचारी के कहने पर निखिल गुप्ता ने अमेरिका में एक अमेरिकी नागरिक की हत्या की साजिश रची।' नोट में 'विकास यादव' को भारतीय सरकारी कर्मचारी और केस में 'सह-प्रतिवादी' बताया गया है। उसे 'वकील और राजनीतिक कार्यकर्ता (पन्नू) की हत्या की साजिश रचने वाला' बताया गया है।

इसमें कहा गया है: 'यादव को भारत सरकार के कैबिनेट सचिवालय ने काम पर रखा था, जहां रॉ का दफ्तर है।'

इसमें आगे कहा गया: 'जून 2023 में या उसके आस-पास, यादव ने अमेरिका में (पन्नू की) हत्या की साजिश रचने के लिए गुप्ता को नियुक्त किया। यादव के कहने पर गुप्ता ने एक ऐसे व्यक्ति से संपर्क किया जिसे वह एक आपराधिक साथी मानता था ताकि न्यूयॉर्क में 'विक्टिम' की हत्या के लिए हिटमैन खोजने में मदद मिल सके। लेकिन वह व्यक्ति दरअसल डीईए (ड्रग एनफोर्समेंट एडमिनिस्ट्रेशन) के साथ काम करने वाला एक विश्वस्त स्रोत था।'

इसमें कहा गया है: 'बाद में यादव, गुप्ता द्वारा की गई डील में, अंडरकवर ऑफिसर को हत्या के लिए 1 लाख डॉलर देने को तैयार हो गया। 9 जून, 2023 या उसके आस-पास, यादव और गुप्ता ने अंडरकवर एजेंट को हत्या के एडवांस पेमेंट के तौर पर 15,000 डॉलर नकद पहुंचाने का इंतजाम किया। जून 2023 के आसपास हत्या की साजिश को आगे बढ़ाने के लिए, यादव ने गुप्ता को 'विक्टिम' की व्यक्तिगत जानकारी दी, जिसमें न्यूयॉर्क शहर में उसके घर का पता, फोन नंबर और उसके रोजमर्रा के व्यवहार की जानकारी शामिल थी। गुप्ता ने यह जानकारी अंडरकवर एजेंट को दे दी। इसके बाद गुप्ता ने यादव को हत्या की साजिश के बारे में लगातार अपडेट दिए, जिसमें विक्टिम की सर्विलांस तस्वीरें भी थीं।'

इस खुलासे पर पन्नू की प्रतिक्रिया थी: 'मोदी सरकार का यह दावा कि भाड़े पर हत्या की साजिश एक 'बदमाश एजेंट' का काम था, संघीय अदालत में पेश सबूतों के सामने बेमानी हो जाता है।' 16 फरवरी को 'इकोनॉमिक टाइम्स' ने रिपोर्ट किया, 'भारतीय अधिकारियों ने दोहराया कि नई दिल्ली इस कथित साजिश में शामिल नहीं थी।' इसमें यह नहीं बताया गया कि वे अधिकारी कौन थे।

गुप्ता का अपराध कबूल लेना कहानी का अंत नहीं। यादव अब भी सह-आरोपी हैं, और अभियोजक साफ तौर पर भारत सरकार के एक विभाग की ओर इशारा कर रहे हैं जो मोदी और राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार अजीत डोभाल के मातहत काम करता है।

> अपनी सीमाओं के बाहर के इस तरह के दुष्कर ऑपरेशन को केवल शीर्ष स्तर से ही मंजूरी दी जा सकती थी। हालांकि तब रॉ के प्रमुख सामंत गोयल थे, लेकिन आदेश ऊपर से ही आए होंगे, इसमें कोई शक नहीं

*

अपनी धरती के बाहर के इस तरह के दुष्कर ऑपरेशन को केवल शीर्ष स्तर से ही मंजूरी दी जा सकती थी। हालांकि तब रॉ के प्रमुख सामंत गोयल थे, लेकिन आदेश ऊपर से ही आए होंगे, इसमें कोई शक नहीं। 1968 में अपने गठन के बाद से रॉ एक काबिल बाहरी इंटेलिजेंस ऑर्गनाइजेशन रहा है, जो कम-से-कम 2014 तक तो रैम्बो-स्टाइल कामों के लिए तो नहीं ही जाना जाता था।

भारत के इंटेलिजेंस ब्यूरो के डायरेक्टर के तौर पर छह महीने बिताने के बाद डोभाल ने वह तरीका अपनाया जिसे भोले-भाले लोगों ने 'डिफेंसिव-ऑफेंसिव' सिद्धांत के नाम से गटक लिया। उनके बकवास आइडिया मोसाद की प्लेबुक से लिए गए थे और मोदी की मनगढ़ंत 'मस्कुलर फॉरेन पॉलिसी' से मेल खाते थे। नतीजा यह हुआ कि भारतीय इंटेलिजेंस अधिकारियों को नॉर्थ अमेरिका, ब्रिटेन और ऑस्ट्रेलिया में अवांछित घोषित कर दिया गया जो भारत के लिए एक बड़ा झटका था।

यादव पर भी गुप्ता की तरह ही तीन मामलों में आरोप तय किए गए थे। अमेरिकी अधिकारियों ने अक्टूबर 2024 में अरेस्ट वारंट जारी किया, और वह अब भी एफबीआई की 'मोस्ट वांटेड' लिस्ट में है, और उसके सिर पर इंटरपोल रेड कॉर्नर नोटिस लटका हुआ है। यह पता नहीं कि 20 साल की जेल की संभावित सजा कम होने की उम्मीद में गुप्ता कितना खुलासा कर चुका है या करने वाला है। (अमेरिका में प्रतिवादी अपना गुनाह कबूल करके प्ली बार्गेन कर सकते हैं और आमतौर पर वे हल्की सजा के बदले सह-आरोपी के बारे में सब कुछ बता देते हैं।)

अब जब गुप्ता ने अपना जुर्म कबूल लिया है, तो अमेरिका यादव के बारे में एक औपचारिक प्रत्यर्पण अनुरोध कर सकता है। यादव को या तो नौकरी से निकाल दिया गया है या उन्होंने आपसी सहमति से सरकारी पद छोड़ दिया है। मोदी सरकार का एक मुश्किल कदम यह हो सकता है कि यादव पर पन्नू या किसी और मामले में केस चलाया जाए। (दिल्ली पुलिस ने कथित तौर पर उनके खिलाफ उगाही का केस दर्ज किया है।) अगर उन्हें न्यायिक हिरासत में लिया जाता है, तो साउथ ब्लॉक उन्हें प्रत्यर्पण से बचाने के लिए 1997 की अमेरिका-भारत प्रत्यर्पण संधि का इस्तेमाल कर सकता है।

शेष पेज 2 पर ▸

दुस्साहस ठीक, पर पकड़े न जाएं...

पेज एक का शेष

आखिर, यादव के पास इस बारे में कहने के लिए बहुत कुछ हो सकता है कि पन्नू की हत्या का ऑर्डर किसने दिया था।

इंटेलिजेंस एजेंसियों का इतिहास रहा है कि वे संदिग्धों, आरोपियों या दोषी अपराधियों के साथ लेन-देन के सौदे करती हैं, उन्हें गंदे कामों के लिए हायर करती हैं, और सार्वजनिक तौर पर इस बात से इनकार करती रहती हैं। भारत सरकार गुप्ता से दूरी बना सकती थी, लेकिन यादव के साथ उनके साफ लिंक के सबूतों को नकारा नहीं जा सकता, जिससे मोदी सरकार मुश्किल में पड़ गई है।

अमेरिकी अटॉर्नी ऑफिस के बयान में जून 2023 में वैंकूवर के बाहरी इलाके में गुरुद्वारे के बाहर सिख अलगाववादी हरदीप सिंह निज्जर की हत्या का भी जिक्र है। तब कनाडा के प्रधानमंत्री जस्टिन ट्रूडो ने कहा भी था कि 'भरोसेमंद आरोप' हैं कि भारत सरकार के एजेंट इसमें शामिल थे।

मोदी सरकार ने इस आरोप को 'बेतुका' बताकर खारिज कर दिया था। हालांकि, पिछले साल अमेरिकी राष्ट्रपति डॉनल्ड ट्रंप के कारण कनाडा को जो आर्थिक नुकसान उठाना पड़ा, उसने नए प्रधानमंत्री मार्क कार्नी को निज्जर मुद्दे को फिलहाल ठंडे बस्ते में डालने पर मजबूर कर दिया है।

निज्जर केस में ज्यादातर सबूत, जिसमें भारतीय अधिकारियों के बीच बातचीत के कथित इंटरसेप्ट भी शामिल हैं, अमेरिका ने कनाडा से साझा किए थे। ट्रंप का भरोसेमंद न होना और अमेरिकी इंटेलिजेंस ऑर्गनाइजेशन के मौजूदा प्रमुख- नेशनल इंटेलिजेंस की निदेशक तुलसी गबार्ड और एफबीआई के निदेशक काश पटेल- में भरोसे की कमी ने कनाडाई इंटेलिजेंस एजेंसियों को सावधान कर दिया है।

विदेश में खालिस्तानियों को मार डालने का रुख शायद अतिवादी है। पंजाब में अलगाववादी भावना कम होने के कारण, ऐसा रवैया न सिर्फ हथौड़े से मक्खी मारने जैसा है, बल्कि इससे एक मरते हुए आंदोलन के फिर से जिंदा हो जाने का भी खतरा है। पन्नू को ज्यादा अहमियत देने से वह हीरो बन गया है। आक्रामक काउंटर-जासूसी तभी काम करती है जब आप पकड़े न जाएं- जेम्स बॉन्ड के बारे में सोचें, जो हर बार किसी न किसी तरह बच निकलता है। ऐसा लगता है कि गुप्ता 007 जितना लकी होने की उम्मीद कर रहा था। ■

आशीष रॉय सीएनएन के एडिटर-एट-लार्ज रह चुके हैं।

गुरिंदर सिंह ढिल्लों होने का मतलब

क्या प्रभावशाली राधा स्वामी सत्संग ब्यास के प्रमुख आध्यात्मिक भूमिका से अब राजनीतिक भूमिका में आ रहे हैं?

हरजिंदर

एक ऐसे राज्य में जहां धर्म और राजनीति का रिश्ता लंबे समय से घालमेल वाला रहा है, गुरिंदर सिंह ढिल्लों से जुड़ी हालिया घटनाओं ने जोरदार बहस छेड़ दी है। ऐसा लगता है कि प्रभावशाली राधा स्वामी सत्संग ब्यास के आध्यात्मिक प्रमुख, जिन्हें उनके भक्त सिर्फ 'बाबा' के नाम से जानते हैं, का पंजाब के राजनीतिक रंगमंच पर ऐसा अवतरण हो रहा है जैसा कभी किसी डेरा प्रमुख का नहीं हुआ।

इन अटकलों की फौरी वजह ढिल्लों का जेल जाकर शिरोमणि अकाली दल (शिअद) के वरिष्ठ नेता बिक्रम सिंह मजीठिया से मिलना था, जो आय से अधिक संपत्ति के मामले में कानूनी लड़ाई में फंसे हुए हैं और उनके खिलाफ ड्रग्स से जुड़े आरोप भी हैं। बैठक के बाद (1 फरवरी को) ढिल्लों ने सबके सामने मजीठिया को बेगुनाह बताया। यह अंदाजा कानूनी तौर पर सही था या नहीं, यह बात अलग है। राजनीतिक रूप से आवेशित पंजाब में, राज्य के सबसे बड़े डेरे के प्रमुख का ऐसा बयान एक साफ राजनीतिक संकेत था, जिसे आम तौर पर सत्ताधारी आम आदमी पार्टी (आप) सरकार को फटकार के तौर पर देखा गया।

ढिल्लों की राजनीतिक पहल यहीं खत्म नहीं हुई। 10 फरवरी को, वह फिरोजपुर में पंजाब के राज्यपाल गुलाब चंद कटारिया के ड्रग-विरोधी जागरूकता के लिए आयोजित पैदल मार्च में शामिल हुए। मंच पर शिअद अध्यक्ष सुखबीर सिंह बादल और पंजाब भाजपा के कार्यकारी प्रमुख अश्विनी शर्मा भी थे। नजारा हैरान करने वाला था: एक आध्यात्मिक नेता आप के विरोध में एकजुट विरोधी राजनीतिक पार्टियों के नेताओं के साथ मंच साझा कर रहे थे।

आयोजन के दौरान बंद कमरे में हुई बैठक ने अटकलों को और हवा दे दी। सियासी गलियारों में अफवाह थी कि ढिल्लों आप और कांग्रेस को टक्कर देने के मकसद से शिअद-भाजपा के संभावित गठबंधन को फिर से खड़ा करने में मदद कर रहे हैं। जानकारों ने उनकी भूमिका को एक 'पुल' जैसा बताया जिसके तहत वह ड्रग-मुक्ति जैसे सामाजिक मुद्दों पर पार्टियों के बीच सहयोग बढ़ा सकें, लेकिन स्पष्ट है कि इसका एक सियासी मकसद है। कुछ लोगों ने तो यहां तक कहा कि भाजपा, जो अब भी पंजाब के मुश्किल राजनीतिक माहौल में जगह बनाने के लिए संघर्ष कर रही है, ढिल्लों को मुख्यमंत्री पद के संभावित चेहरे के तौर पर देख सकती है। हालांकि ऐसी किसी योजना का कोई आधिकारिक संकेत नहीं है, लेकिन डेरा प्रमुख के बारे में बातें जिस नाटकीय तरीके से बदल गई हैं, उसे देखते हुए ये अटकलें कुछ आधार तो पा ही जाती हैं।

डेरा ब्यास में राजनीतिक हस्तियों का पहुंचना कोई नई बात नहीं है। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी, गृह मंत्री अमित शाह और आरएसएस प्रमुख मोहन भागवत, सब ने हाल के सालों में डेरा में माथा टेका है। ऐसे दौरे पंजाब की लंबी राजनीतिक संस्कृति का हिस्सा रहे हैं, जहां पार्टियां चुनाव से पहले धार्मिक और आध्यात्मिक संस्थाओं से जुड़ाव प्रदर्शित करती हैं।

लेकिन, जो नया है, वह है भूमिकाओं में स्पष्ट उलटफेर। पारंपरिक रूप से नेता ही आशीर्वाद लेते हैं; शायद ही कभी किसी डेरा प्रमुख ने इतनी सक्रियता के साथ राजनीतिक गतिविधियों में भाग लिया हो।

अमृतसर के राजनीतिक पर्यवेक्षक जगरूप सिंह सेखों का तर्क है कि भाजपा पंजाब में एक जरूरी खिलाड़ी बनने के लिहाज से कोई कसर नहीं छोड़ रही है। उनके मुताबिक, पार्टी मौजूदा राजनीतिक समीकरणों को छिन्न-भिन्न करने और एक ऐसे राज्य में जगह बनाने की कोशिश कर रही है जहां उसे पहले से ही संघर्ष करना पड़ रहा है। इस संदर्भ में, ढिल्लों की बढ़ी हुई सार्वजनिक गतिविधियां और भी अहम हो जाती हैं।

भाजपा एक ऐसे राज्य में अपने लिए जगह बनाने की कोशिश कर रही है, जहां उसे पहले से ही तरह-तरह की मुश्किलों का सामना करना पड़ रहा है। ऐसे में ढिल्लों की बढ़ी हुई सार्वजनिक गतिविधियां और भी अहम हो जाती हैं

फोटो: आईएएनएस

अवतरण राधा स्वामी सत्संग ब्यास के प्रमुख गुरिंदर सिंह ढिल्लों जिनके राजनीति में आने को लेकर लगाई जा रही अटकलें

राधा स्वामी सत्संग ब्यास यकीनन पंजाब का सबसे असरदार डेरा है, जिसके भारत और विदेश में लाखों अनुयायी हैं। इसका बड़ा नेटवर्क और इसकी अनुशासित संरचना इसे जबरदस्त सामाजिक महत्व देती है। फिर भी, डेरों को वोट बैंक के तौर पर देखने के बावजूद, इस बात को साबित करने का कोई विश्वसनीय शोध नहीं कि डेरा की मदद सीधे तौर पर चुनावी नतीजों को बदल पाती है। राजनीतिक दल उनका आशीर्वाद लेना जारी रखते हैं, लेकिन वोटिंग पैटर्न पर असली असर मोटे तौर पर सिर्फ नैरेटिव तक ही सीमित रहता है।

ढिल्लों की अपनी सार्वजनिक छवि भी विवादों से घिरी है। उनका नाम रैनबैक्सी स्कैंडल से जुड़ी कार्रवाई में आया था, जिसमें कंपनी के पूर्व प्रमोटर मालविंदर और शिविंदर सिंह शामिल थे। मालविंदर सिंह ने कोर्ट में आरोप लगाया कि रैनबैक्सी में हिस्सेदारी की बिक्री से हुई कमाई का बड़ा हिस्सा ढिल्लों और उनके परिवार को दिया गया था। 2019 में, दिल्ली हाईकोर्ट ने इस मामले से जुड़े ढिल्लों, उनके परिवार और दर्जनों दूसरी संस्थाओं के खिलाफ 'गार्निशी ऑर्डर' जारी किए थे। यह ऐसा निर्देश है जिसमें किसी तीसरे पक्ष को कर्ज चुकाने के लिए सीधे क्रेडिटर को पैसे देने होते हैं। शुरू में ढिल्लों परिवार ने हलफनामा दायर करके कहा कि उनपर सिंह भाइयों की कंपनियों का कोई पैसा बकाया नहीं। उसी साल बाद में, ढिल्लों ने 2006 के कुछ वित्तीय लेनदेन की बात स्वीकार की, हालांकि उन्होंने बताई गई देनदारी के स्तर पर सवाल उठाया और कहा कि लेन-देन का पूरा और साफ हिसाब-किताब पेश नहीं किया गया था। इस घटना ने डेरा प्रमुख की लो-प्रोफाइल सार्वजनिक छवि को नुकसान पहुंचाया।

कुछ विश्लेषकों का कहना है कि रैनबैक्सी विवाद के बाद के सालों में ढिल्लों की राष्ट्रीय नेताओं के साथ स्पष्ट नजदीकी शायद रणनीतिक रही होगी। यह अपने प्रभाव-मंडल को मजबूत बनाए रखने या फिर मुश्किल समय में, जब एजेंसियां उनके पीछे पड़ जाएं, तो खुद को महफूज रखने का एक तरीका था। हालांकि ऐसे दावे अंदाजे पर ही आधारित हैं, लेकिन वे अब सामने आ रहे व्यापक नैरेटिव के अनुरूप लग रहे हैं।

एक अहम और कुछ हद तक अप्रत्याशित सांगठनिक फैसले में, जसदीप सिंह गिल को 2 सितंबर 2024 को ढिल्लों का उत्तराधिकारी नियुक्त किया गया था। गिल की प्रोफाइल काफी अलग है: आईआईटी, एमआईटी और कैम्ब्रिज जैसे जाने-माने संस्थानों से पढ़ाई करने वाले, जिनके पास रैनबैक्सी में वरिष्ठ पद पर काम करने का कॉरपोरेट अनुभव भी है। ढिल्लों के इस कदम को सफलता को संस्थागत बनाने और शायद डेरा को भविष्य की मुश्किलों से बचाने की कोशिश के तौर पर देखा गया।

इस पृष्ठभूमि में ढिल्लों का हालिया राजनीतिक जुड़ाव और भी ज्यादा अहम लगता है। क्या वह धीरे-धीरे आध्यात्मिक नेतृत्व को राजनीतिक भूमिका में बदल रहे हैं? या उनकी गतिविधियां बस ऐसे ही हैं जिन्हें वह और उनके भक्त सामाजिक मुद्दे पर नैतिक हस्तक्षेप करार दे सकें?

पंजाब का राजनैतिक इतिहास ऐसे तमाम उदाहरणों से भरा पड़ा है, जब धार्मिक और सांप्रदायिक संगठनों ने सार्वजनिक विमर्श पर असर डाला है। फिर भी, इतने बड़े डेरा प्रमुख का सीधा और स्पष्ट राजनीतिक रुख बहुत कम देखने को मिलता है। जैसे-जैसे चुनाव पास आ रहे हैं, पंजाब के डेरों में सद्भावना पाने का मुकाबला और तेज होगा। आप के सत्ता में होने, शिअद के फिर से खड़ा होने की कोशिशों और भाजपा की अपनी जगह बनाने की बेचैनी के कारण, राज्य में अभी उथल-पुथल की स्थिति बनी हुई है। ■

एआई तो ठीक है, पर रोजगार का क्या होगा?

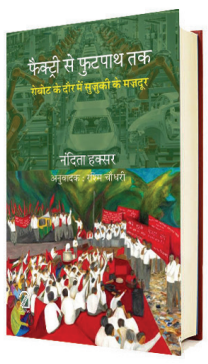

पुस्तक फैक्ट्री से फुटपाथ तक: रोबोट के दौर में सुजुकी के मज़दूर

लेखिका	नंदिता हक्सर
अनुवादक	रश्मि चौधरी
पेज	252
मूल्य	पेपरबैक 475 रुपये
प्रकाशक	आकार बुक्स

नंदिता हक्सर

(अभी 16 से 21 फरवरी तक दिल्ली में एआई सम्मेलन हुआ जिसमें 20 से अधिक देशों के लोगों ने भाग लिया। लेकिन उससे काफी पहले से ही) हर दिन हम ऐसी कहानियां पढ़ते हैं या वीडियो देखते हैं जिनमें बताया जाता है कि किस तरह से रोबॉट हमारे बहुत सारे काम और फुर्सत के समय पर कब्जा किए जा रहे हैं।... 'टाइम्स ऑफ इंडिया' ने अप्रैल 2025 में एक रिपोर्ट में बताया था कि कैसे रोबॉट बेंगलुरु में नौकरानियों की जगह ले रहे हैं। रिपोर्ट के मुताबिक, मनीषा नामक एक गृहिणी ने बताया कि रोबॉट के आने के बाद से उनके बाहर खाने के दिन कम हो गए हैं, और उनकी ढाई साल की बेटी नक्षत्रा रोबॉट द्वारा तैयार किया गया पोहा, पाव भाजी और राजमा मसाला के साथ चावल मजे से खाती है। मनीषा गर्व से बताती हैं कि उनका रोबॉट 'माय किचन रोबॉट' सब्जियां काट सकता है, भून सकता है, तल सकता है, उबाल सकता है और आटा गूंथ सकता है।

युवा अपने होमवर्क में मदद के लिए आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (एआई) ऐप्स का उपयोग करने लगे हैं, निवेशक अपने व्यवसाय में मदद के लिएआई का उपयोग करते हैं। ...

नवंबर 2022 में ओपन एआई द्वारा चैटजीपीटी की रिलीज ने एआई को हर घर तक पहुंचा दिया। कुछ लोग एआई से अपनी छुट्टियां प्लान करने के लिए कह रहे हैं, तो कुछ लोग अंग्रेजी न जानते हुए भी जादुई रूप से अंग्रेजी में ईमेल लिख रहे हैं। एक मामले में तो मजदूरों ने चैटजीपीटी से ही पूछ लिया कि क्या वे श्रम न्यायालय में वर्षों से लंबित अपना मामला जीतेंगे। ...

[...]

सरकार के पास पहले से ही रोबॉटिक्स पर एक राष्ट्रीय रणनीति मसौदा तैयार है जिसे 2023 में सार्वजनिक रूप से रखा गया था। इलेक्ट्रॉनिक्स और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय रोबॉटिक्स के लिए नोडल एजेंसी के रूप में कार्य कर रहा है। एक राष्ट्रीय रोबॉटिक्स मिशन और एक राष्ट्रीय एआई मिशन स्थापित किया गया है। राष्ट्रीय आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस मिशन उन प्रयासों पर ध्यान केन्द्रित करेगा जो "स्वास्थ्य सेवा, शिक्षा, कृषि, स्मार्ट शहरों और बुनियादी ढांचे, जिसमें स्मार्ट गतिशीलता और परिवहन शामिल हैं," जैसे क्षेत्रों में सामाजिक जरूरतों को पूरा करने में भारत को लाभान्वित करेंगे। कैबिनेट ने मार्च 2024 में राष्ट्रीय एआई मिशन को पांच वर्षों के लिए 10,371.92 करोड़ के बजट परिव्यय के साथ मंजूरी दे दी है।

पर इन नई प्रौद्योगिकियों के आने से जो मुख्य सवाल खड़ा होता है, वह यह है कि हमारे कामकाजी जीवन पर इन प्रौद्योगिकियों का क्या असर पड़ेगा? ... एक तरफ सरकार लगातार एआई और रोबॉट को बढ़ावा दे रही है, वहीं दूसरी ओर अधिक-से-अधिक लोग अपनी नौकरियां खो रहे हैं। टीसीएस, इंफोसिस, टेक महिन्द्रा और विप्रो सहित प्रमुख भारतीय आईटी कंपनियों ने चुपचाप अपने कार्यबल का पुनर्गठन करना शुरू कर दिया है और 50,000 से अधिक लोग पहले ही अपनी नौकरियां खो चुके हैं।

[...]

कई लोग तर्क देते हैं कि पिछली तीन औद्योगिक क्रांतियों के दौरान जो भाप, बिजली और डिजिटल प्रौद्योगिकियों द्वारा संचालित थीं, लोगों को विस्थापित किया गया और व्यवधान उत्पन्न हुआ, लेकिन आखिरकार बहुत सारी नौकरियां पैदा हुईं। और उनका कहना है कि इस बार भी ऐसा ही होगा। हालांकि, एक तर्क यह भी है कि अन्य तकनीकी क्रांतियों और चौथी औद्योगिक क्रांति के बीच मौलिक अंतर यह है कि इसमें संभावना है कि रोबॉट मनुष्यों को प्रतिस्थापित कर देंगे। यह अंततः मजदूरों के बिना उद्योग और रोजगार के बिना विकास की ओर ले जाएगा।

[...]

1948 में संयुक्त राष्ट्र महासभा ने मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा पारित की। घोषणा का अनुच्छेद 23 कहता है: "प्रत्येक व्यक्ति को काम करने का, स्वतंत्र रूप से रोजगार की पसंद का, काम की न्यायसंगत और अनुकूल परिस्थितियों का और बेरोजगारी से संरक्षण का अधिकार है।"

और 1950 में भारत के संविधान ने इस अधिकार को राज्य के नीति निदेशक सिद्धांत के रूप में शामिल किया। अनुच्छेद 41 कहता है: "राज्य अपनी आर्थिक क्षमता और विकास की सीमाओं के भीतर, काम पाने, शिक्षा पाने और बेरोजगारी, बुढ़ापा, बीमारी और अक्षमता तथा अन्य अवांछित अभाव की दशाओं में लोक सहायता पाने के अधिकार को सुनिश्चित करने के लिए प्रभावी प्रावधान करेगा।"

अधिकांश श्रम कानूनों ने इन सिद्धांतों को अपनाया और भले ही कानूनों का उल्लंघन किया गया हो, पर कानून स्वयं ट्रेड यूनियन आंदोलन के हाथों में अधिकारों की रक्षा करने का एक हथियार था। लेकिन अब नई श्रम संहिता और 'श्रम शक्ति नीति 2025' सामूहिक सौदेबाजी के उस मूल अधिकार को कमजोर करने की कोशिश करती है, जिसके द्वारा मजदूर खुद को यूनियनों में संगठित कर सकते थे और अपनी कामकाजी परिस्थितियों में सुधार के लिए लड़ सकते थे।

नई श्रम नीति में नए एआई-संचालित प्रौद्योगिकियों के लिए न्यायसंगत संक्रमण (जस्ट ट्रांजीशन) के मुद्दे को नजरंदाज किया गया है।

[...]

मारुति सुजुकी अस्थायी मजदूर यूनियन द्वारा मई 2025 में जारी एक पैम्फलेट के अनुसार, "सुजुकी वर्तमान में 34,918 मजदूरों को रोजगार देती है, जिनमें से केवल 18 प्रतिशत स्थायी हैं, 40.72 प्रतिशत ठेका मजदूर हैं, 21.6 प्रतिशत अस्थायी मजदूर हैं, 21 प्रतिशत प्रशिक्षु और अपरेंटिस हैं। विशाल अस्थायी कार्यबल एकसाथ मिलकर कुल कार्यबल के 80 प्रतिशत से अधिक का हिस्सा बनाते हैं।"

ये आंकड़े "भारत के ऑटोमोटिव क्षेत्र में कार्य का भविष्य" पर प्रस्तुत एक रिपोर्ट में दिए गए आंकड़ों से मेल खाते हैं। उस रिपोर्ट में कहा गया है कि "मूल उपकरण निर्माता और टियर1 वेंडरों का स्थायी मजदूरों के अनुपात में गैर-मानक रोजगार का एक महत्वपूर्ण भाग है, जिसमें शॉप फ्लोर पर अधिकांश काम गैर-मानक रोजगार वाले मजदूरों द्वारा किया जाता है। उदाहरण के लिए, मारुति सुजुकी इंडिया लिमिटेड (एमएसआईएल) जैसे एक प्रमुख मूल उपकरण निर्माता (ओईएम) के मानेसर प्लांट में 65 प्रतिशत गैर-मानक रोजगार वाले मजदूर उनके फ्लोर पर नियुक्त थे, और एक दूसरे टियर1 ऑटो कंपोनेंट निर्माता, मुंजाल किरियू के प्लांट में ये 70 प्रतिशत थे। इसमें प्रशिक्षुओं और अपरेंटिस की संख्या शामिल नहीं है, जो ओईएम में 8 प्रतिशत तक पाए गए हैं।"...

जब मारुति के अस्थायी मजदूरों को पता चला कि मारुति सुजुकी ने हरियाणा के सोनीपत में खरखौदा में एक विशाल नया प्लांट खोला है, तो उन्होंने कारखाने में नौकरियों की मांग करना शुरू कर दिया। लेकिन उन्हें यह जानकर झटका लगा कि नए प्लांट में, जो अपनी पहली इलेक्ट्रिक कार बनाने के लिए पूरी तरह तैयार था, कोई स्थायी मजदूर नहीं था।

इस समय तक, नई श्रम संहिता लागू हो चुकी थी, जिसने प्रबंधन को निश्चित अवधि के रोजगार (एफटीई) के लिए मजदूरों को नियुक्त करने की अनुमति दे दी। दूसरे शब्दों में, कोई विस्थापन या छंटनी नहीं होगी क्योंकि स्थायी नौकरियों की मांग उठाने के लिए कोई स्थायी मजदूर या ट्रेड यूनियन ही नहीं होंगे।

मजदूरों को पहले यह एहसास नहीं हुआ था कि रोबॉट ने उनकी नौकरियां चुरा ली हैं। लेकिन धीरे-धीरे उन्हें यह एहसास होने लगा कि नई प्रौद्योगिकियों ने न केवल उनकी नौकरियां, बल्कि उनके कठिनाई से जीते गए अधिकार भी चुरा लिए थे।

[...]

जो मजदूर अभी भी मजदूरों को संगठित करते हैं, गिग वर्कर्स के अधिकारों और अस्थायी मजदूरों के लिए लड़ते हैं, वे जानते हैं कि लड़ाई अंततः प्रौद्योगिकी के खिलाफ नहीं है, बल्कि एक राजनीतिक व्यवस्था के खिलाफ है जो लोगों से भी ऊपर मुनाफे को रखती है। यह कुछ ऐसा है जिसे नोबेल पुरस्कार विजेता कंप्यूटर वैज्ञानिक जेफ्री हिंटन जिन्हें एआई का गॉडफादर" कहा जाता है, ने भी स्वीकार किया है।

उन्होंने चेतावनी दी है कि "आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस बेरोजगारी बढ़ाएगा जबकि लाभ को और अधिक बढ़ाएगा, जिसके लिए वह पूंजीवाद को जिम्मेदार मानते हैं, न कि प्रौद्योगिकी को। उन्होंने यह भी कहा कि हालांकि बड़े पैमाने पर छंटनी अभी तक नहीं हुई है, पर एआई पहले से ही शुरुआती स्तर के अवसरों को कम कर रहा है... उन्होंने दीर्घकालिक जोखिमों के बारे में भी आगाह किया। उनके अनुमान से 10-20 प्रतिशत संभावना है कि एआई अपने अनियंत्रित सुपरइंटेलिजेंस या दुर्भावनापूर्ण तत्वों का दुरुपयोग कर लोगों के अस्तित्व के लिए खतरा पैदा कर सकता है। साथ ही उन्होंने संयुक्त राज्य अमेरिका में कमजोर नियामक प्रयासों की भी आलोचना की।" ■

एक तरफ सरकार लगातार एआई और रोबॉट को बढ़ावा दे रही है, दूसरी तरफ अधिक-से-अधिक लोग अपनी नौकरियां खो रहे हैं। कई प्रमुख आईटी कंपनियों ने कार्यबल घटाना शुरू कर दिया है। ऐसे में बड़ा सवाल यह है कि नई प्रौद्योगिकियों का हमारे जीवन पर क्या प्रभाव पड़ेगा

नंदिता हक्सर प्रसिद्ध अधिवक्ता और मानवाधिकार कार्यकर्ता हैं।

इस समाचारपत्र का प्रकाशन **पवन कुमार बंसल** द्वारा हेराल्ड हाउस, 5-ए, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-11002 से **दि एसोसिएटेड जर्नल्स लिमिटेड**, हेराल्ड हाउस, 5-ए, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110002 की ओर से संपादन **राजेश झा** द्वारा और मुद्रण आर. सी. मल्होत्रा द्वारा दि इंडियन एक्सप्रेस (प्रा.) लिमिटेड प्रेस, ए-8, सेक्टर-7, नोएडा- 201301, उत्तर प्रदेश से किया जा रहा है।

नफ़रत के खिलाफ 'दीपक' बनते लोग

'बांटो और राज करो' की पॉलिटिक्स से परेशान लोग अब प्रतिवाद करने सामने आ रहे हैं

नंदलाल शर्मा

कोटद्वार में जिम चलाने वाले दीपक कुमार एक मुस्लिम दुकानदार को धमकाने आए बजरंग दल के लोगों के सामने जिस तरह 'मोहम्मद' दीपक बनकर तन गए और अब भी झुकने को तैयार नहीं हैं, और जिस तरह लोग उनके समर्थन में लगातार सामने आ रहे हैं, लगता है, उसने देश के विभिन्न प्रदेशों में नफ़रत की राजनीति से ऊब गए लोगों को प्रेरणा दी है।

उत्तर प्रदेश में मथुरा जिले के नौहझील प्राथमिक स्कूल के प्रधानाध्यापक जान मोहम्मद का मामला ही लीजिए। उन्हें एक स्थानीय भाजपा नेता की एक झूठी शिकायत के आधार पर बिना जांच-पड़ताल ही निलंबित कर दिया गया। इसमें कोई आश्चर्य नहीं था क्योंकि यूपी की यही पहचान बन गई है। नई बात यह हुई कि इलाके के लोग इसके खिलाफ खड़े हो गए और प्रशासन को अपना फैसला बदलने पर मजबूर किया।

यह स्कूल जिस ग्राम पंचायत में है, वहां की आबादी लगभग 20 हजार है। यह हिन्दू बहुल इलाका है। लेकिन फिर भी इलाके के लोगों ने शिक्षक जान मोहम्मद का खुलकर साथ दिया। इलाके के तीन-चार सौ लोग जिलाधिकारी से मिलने गए। ध्यान रहे कि इस स्कूल में जान मोहम्मद के अलावा सभी सात शिक्षक हिन्दू हैं। इनमें दो 'शिक्षा मित्र' भी हैं।

मांट विधानसभा से 8 बार के पूर्व विधायक श्यामसुंदर शर्मा कहते हैं कि जान मोहम्मद ने 12 साल तक अर्धसैनिक बल में सेवा की। वह 17 साल से यहां हैं और उनके अनुशासन की वजह से छात्र उनका आदर करते हैं, शिक्षक भी उनके साथ स्नेह रखते हैं। इसलिए अचानक किए गए उनके निलंबन ने सबको चौंकाया।

दरअसल, उन्हें पार्टी के बाजना मंडल अध्यक्ष और नौशेरपुर निवासी दुर्गेश प्रधान की शिकायत के आधार पर निलंबित किया गया था। इसमें कहा गया था कि जान मोहम्मद बच्चों को बहला-फुसलाकर इस्लाम का प्रचार करते हैं, उसे अपनाने के प्रति प्रेरित करते हैं, उनका ब्रेनवाश करके नमाज पढ़वाते हैं, और हिन्दू देवी-देवताओं का अपमान करते हैं। यह भी कहा गया था कि जान मोहम्मद सुबह-सुबह विद्यालय में राष्ट्रगान, जन गण मन, का भी गायन नहीं कराते और अगर बच्चे करने लगें तो उनको हड़काते हैं। यह भी कि स्कूल में दूर-दूर से मुस्लिम तब्लीगी आते हैं और वे भी बच्चों के साथ उनके परिजनों पर इस्लाम धर्म अपनाने के लिए जोर देते हैं।

इस शिकायत के आधार पर 31 जनवरी 2026 को जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी रतन कीर्ति ने बिना किसी जांच के 24 घंटे के भीतर जान मोहम्मद को निलंबित कर दिया। साथ ही मामले की जांच के लिए एक दो-सदस्यीय समिति का गठन किया गया और इसे एक महीने का समय दिया गया। समिति के खंड शिक्षा अधिकारी छाता एवं मांट से थे।

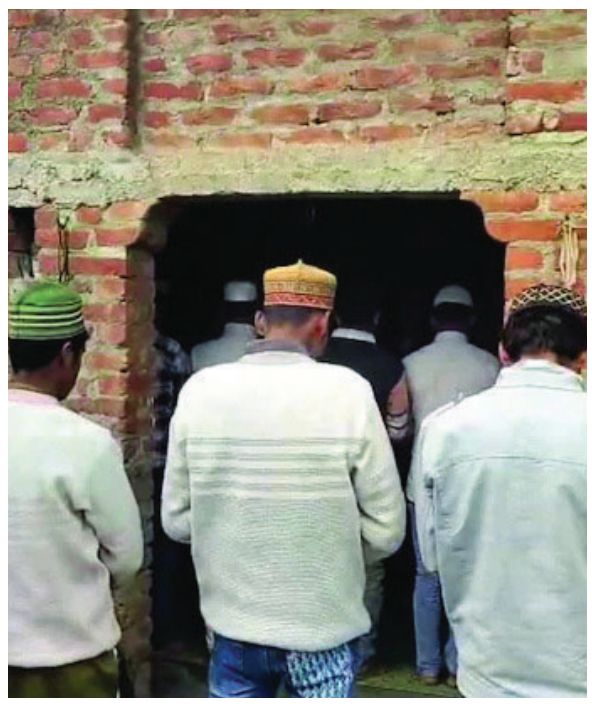

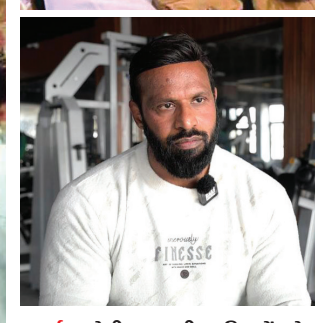

समर्थन बरेली का खाली घर जिसमें जुमे की नमाज पढ़ने पर पुलिस ने कार्रवाई की। (दाएं ऊपर) जान मोहम्मद और 'मोहम्मद' दीपक जिन्हें मिला जनसमर्थन

> मथुरा, इलाहाबाद, वाराणसी की घटनाएं बताती हैं कि चाहे विद्यार्थी हों या समाज के अन्य वर्गों के लोग, उन्हें समझ में आ रहा है कि उन्हें बांटे रखने की कुत्सित योजना का पानी अब सिर से ऊपर बहने की कगार पर है

लोग इसके खिलाफ आंदोलन पर उतर आए और जिलाधिकारी से मिले। पूर्व विधायक श्यामसुंदर शर्मा ने प्रशासन को भी बताया कि अभी चल रहे एसआईआर (विशेष गहन पुनरीक्षण) के दौरान जान मोहम्मद बीएलओ थे। भाजपा विधायक राजेश चौधरी ने जान मोहम्मद को मतदाताओं की एक सूची दी और उनके नाम हटाने को कहा। पर उन्होंने बिना उचित कारण किसी भी मतदाता का नाम काटने से मना कर दिया। इस पर विधायक चौधरी ने उन्हें देख लेने की धमकी दी। इस पर जान मोहम्मद का कहना था कि 'इधर से भी मरना है, उधर से भी मरना है, तो क्यों न कुछ अच्छा करके मरें।'विधायक की इस धमकी के बाद ही पार्टी के स्थानीय नेता दुर्गेश प्रधान ने जान मोहम्मद के खिलाफ झूठी शिकायत की।

जनआंदोलन का असर यह हुआ कि प्रशासन ने निलंबन के तीन दिन बाद ही 3 फरवरी को एक नया आदेश जारी करते हुए जांच कमिटी को तीन दिनों के अंदर अपनी रिपोर्ट सौंपने को कहा। इसके बाद 6 फरवरी को प्रशासन ने नया आदेश जारी करते हुए कहा कि जांच में जान मोहम्मद पर लगाया गया कोई भी आरोप सच नहीं पाया गया, इसलिए उन्हें सवेतन बहाल किया जाता है।

जान मोहम्मद अब भी मीडिया से बात नहीं करना चाहते। वह कहते हैं कि उनके नाम पर राजनीति न हो, वह अपनी लड़ाई खुद लड़ लेंगे। वैसे स्थानीय निवासी देवदत्त पाठक कहते हैं कि जनता जान मोहम्मद के साथ नहीं खड़ी होती, तो उनकी बहाली नहीं होती, प्रशासन को जनता की ताकत के आगे झुकना पड़ा।

पाठक इस बात पर ध्यान दें कि बिना निर्धारित प्रक्रिया अपनाए, मतलब अपने स्तर पर प्राथमिक जांच किए बिना ही, जान मोहम्मद को निलंबित करने वाले जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी रतन कीर्ति के खिलाफ अब तक कोई कार्रवाई नहीं हुई है। झूठी शिकायत करने वाले स्थानीय भाजपा नेता दुर्गेश प्रधान पर तो, खैर, क्या ही कार्रवाई होनी है, इस प्रकरण पर भाजपा विधायक राजेश चौधरी ने खेद तक प्रकट करने की जरूरत महसूस नहीं की है।

*

सोशल मीडिया पर वायरल हो रहा 'कहो नरेंदर मजा आ रहा' गाना आपने सुना होगा। इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के छात्र संगठन दिशा से जुड़े प्रियांशु ने इसे गाया है। दिशा कैंपस में सांस्कृतिक तौर पर सक्रिय है और फिल्म शो, स्टडी सर्कल, परिचर्चा और गीतों के जरिये युवाओं के मुद्दों को स्वर दे रहा है।

यूजीसी रेगुलेशन के मामले में सुप्रीम कोर्ट द्वारा स्टे लगाए जाने के बाद दिशा से जुड़े छात्रों ने कैंपस के बरगद लॉन में 3 फरवरी को एक परिचर्चा का आयोजन किया। जब विचार-विमर्श चल रहा था, उसी दौरान 30-40 अराजक तत्व इन छात्रों के इर्द-गिर्द इकठ्ठा होने लगे। इसी समय विश्वविद्यालय के मेन गेट से बिना नंबर की एक गाड़ी अंदर आई, जिस पर बजरंग दल लिखा था। इसमें सवार लोगों ने पहले चंद्रप्रकाश नाम के छात्र को बाहर बुलाया और उसका कॉलर पकड़कर मारपीट करने लगे। इस पर कुछ छात्रों ने बीच-बचाव करने की कोशिश की लेकिन वे लोग गाली-गलौच करते हुए जातिसूचक गालियां देने लगे। आरोप है कि छात्राओं के साथ भी इनलोगों ने बदतमीजी की। इन सबके बीच विश्वविद्यालय प्रशासन मूकदर्शक बना रहा जबकि आसपास सेक्योरिटी गार्ड भी थे।

छात्र इस आशंका से इनकार नहीं करते कि 'कहो नरेंदर मजा आ रहा' गीत के वायरल होने की वजह से इस किस्म की घटना हुई; संभव है कि यह भी एक वजह हो। यूनिवर्सिटी के ही छात्र प्रियांशु कहते हैं कि हम लोगों ने स्थानीय थाने पर एफआईआर के लिए शिकायती पत्र दिया है, लेकिन इंचार्ज कहते हैं कि जब तक यूनिवर्सिटी से रिपोर्ट नहीं आएगी, मामला दर्ज नहीं करेंगे। वैसे, यूनिवर्सिटी प्रशासन ने निधि और भावेश दुबे नामक छात्रों को निलंबित कर दिया है। साथ ही निष्कासन का 'कारण बताओ' नोटिस भी जारी किया गया है।

छात्रों का कहना है कि विश्वविद्यालय में प्रवेश से पहले परिचय पत्र दिखाना लगभग अनिवार्य है। ऐसे में, एक विशेष संगठन की चारपहिया गाड़ी का धड़ल्ले से परिसर में घुसना आश्चर्य ही है। जब घटना हो रही थी, तब तक प्रॉक्टर वहां आ चुके थे, पर उन्होंने इन अराजक तत्वों को वहां से भाग जाने का मौका दिया और पीड़ित छात्रों को ही अपने ऑफिस लेकर चले गए।

*

14 फरवरी, वैलेंटाइंस डे, को जयपुर से एक वीडियो सामने आया। इस वीडियो में कुछ युवक गले में भगवा पट्टा डाले और हाथों में डंडा लिए पार्क में घूमते दिखाई दिए। वे पार्क में बैठे हुए युवक-युवतियों से उनका धर्म और आपसी संबंध पूछते हैं और उन्हें धमकाते हैं। इसी दौरान पार्क में मौजूद कुछ युवक उन्हें घेर लेते हैं और उनसे आईडी दिखाने की मांग करते हैं। पूछते हैः "तुम क्या पुलिस वाले हो? या किस संगठन से हो? कौन है तुम्हारा लीडर?" पलट-जवाब सिर्फ यह कि "यह पट्टा देखो, बजरंग दल से हैं"। लेकिन पार्क में मौजूद लोगों के सवालों का दबाव इतना बना कि उन्हें उल्टे पैर भागना पड़ा।

ऐसा ही एक वीडियो वाराणसी से भी सामने आया जहां पुलिस-प्रशासन का साधारण रवैया सांप्रदायिक शक्तियों को ही प्रोत्साहन दे रहा है। लेकिन उनके रंग-ढंग से ऊब गए लोग यहां भी सामने आ रहे हैं। वाराणसी प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी का संसदीय इलाका है। यहां 60 साल पुरानी बकरा मंडी है। स्थानीय गोट मीट यूनियन के लीगल एडवायजर अब्दुल्ला बताते हैं कि कुछ लोगों ने अफवाह फैला दी कि मंडी में गौकशी हो रही है। इसकी जांच करने के नाम पर कुछ लोग दुकानदारों के लाइसेंस चेक करने के लिए यहां पहुंच गए। ये दो दर्जन लोग खुद को अधिकारी बता रहे थे। स्थानीय निवासी आदिल खान कहते हैं कि मंडी से हजारों लोगों का कारोबार जुड़ा है। अफवाह फैलाकर लोगों की रोजी-रोटी के खिलाफ साजिश हो रही है।

ग़नीमत कि यहां भी कुछ लोग प्रतिवाद में खड़े हुए और इन 'अधिकारियों' को रास्ता नापने पर मजबूर किया। ■

फोटो: गेटी इमेजेज

संकट भारत में बीटी कॉटन के आने के बाद कम पैदावार और महंगी टेक्नोलॉजी ने बढ़ा दी है किसानों की परेशानी

अमेरिकी जीएम फसलों को मंजूरी के मायने

हमारे किसानों के हितों के अंत की शुरुआत मात्र है भारत-अमेरिका व्यापार समझौता, निर्यात बाजार पर पड़ेगा असर

रश्मि सहगल

केन्द्रीय कृषि मंत्री शिवराज सिंह चौहान ने आखिरकार भारत-अमेरिका व्यापार समझौते पर चुप्पी तोड़ी। पिछले साल ही भारत को आनुवंशिक रूप से संशोधित फसलों के प्रवेश की अनुमति देने में सावधानी बरतने पर जोर देने वाले चौहान ने 17 फरवरी को घोषणा की कि भारतीय किसानों को चिंता करने की कोई जरूरत नहीं है, मौजूदा बातचीत में उनके हितों की 'पूरी तरह से रक्षा' की गई है। हालांकि आनुवंशिक रूप से संशोधित सोयाबीन से बने सोयाबीन तेल और मक्का से बने डीडीजी (सूखे अनाज) के आयात पर वह कम ही बोले, जिनका उल्लेख 'अंतरिम व्यापार समझौते' के संयुक्त ढांचे में किया गया है।

पर्यावरण पर केन्द्रित अंतरराष्ट्रीय पत्रिका 'डाउन टू अर्थ' के अनुसार, विज्ञान और पर्यावरण केन्द्र द्वारा 2018 में की गई एक जांच में पाया गया था कि 'भारत में 65 खाद्य उत्पादों में से 32 प्रतिशत में जीएम सामग्री पाई गई थी, जिनमें से 80 प्रतिशत आयातित थी'।

सतत एवं समग्र कृषि गठबंधन (आशा-किसान स्वराज) के शोधकर्ता श्रीधर कृष्णस्वामी की आशंका है कि "डीडीजी और सोयाबीन महज चाल है और हमारा कृषि बाजार पूरी तरह से खुलने जा रहा है।" आखिर अमेरिका भारत से 'प्रतिबंधात्मक' व्यापार प्रथाएं खत्म करने या शिथिल करने पर जोर क्यों दे रहा है?

समझौते में आनुवंशिक रूप से संशोधित जिन खाद्य पदार्थों को मंजूरी दी गई है, उनमें सोयाबीन तेल और मक्का से बने डीडीजी शामिल हैं, जिनका इस्तेमाल पशुओं और मुर्गी पालन में होता है। इस कदम से नरेन्द्र मोदी सरकार ने आनुवंशिक रूप से संशोधित खाद्य फसलों पर भारत में लगे दीर्घकालिक प्रतिबंध खत्म कर दिए हैं। पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम 1986 के तहत, आनुवंशिक रूप से संशोधित फसलों के आयात पर प्रतिबंध लगा दिया गया था, अपवादस्वरूप सिर्फ 2002 में बीटी कपास को छूट मिली थी।

भारत का जोर इस बात पर था कि खाद्य श्रृंखला में प्रवेश करने वाले प्रत्येक आनुवंशिक रूप से संशोधित जीव के लिए अनुमोदन जरूरी होना चाहिए। नवंबर 2022 तक, भारतीय खाद्य सुरक्षा और मानक प्राधिकरण ने एक प्रतिशत या उससे अधिक आनुवंशिक रूप से संशोधित सामग्री वाले खाद्य पदार्थों पर लेबल लगाना अनिवार्य कर दिया था और यह भी कहा था कि सभी आयातित खेपों को अपने गैर-आनुवंशिक रूप से संशोधित होने का प्रमाण देना होगा। 2009 में, कृत्रिम रूप से संशोधित बैगन की खेती की अनुमति देने वाले कदमों का भारी विरोध हुआ था, हालांकि इस बार, सौदे को लेकर अस्पष्टता और ब्योरे की कमी से जनता की प्रतिक्रिया अपेक्षाकृत धीमी है। फिर भी, कई विशेषज्ञ मानते हैं कि इतना तो साफ है कि भारत ने प्रमुख वैश्विक बीज कंपनियों (बायर-मोनसेंटो, ड्यूपॉन्ट पायनियर, सिंजेंटा, डॉव) और अमेरिका, जो दुनिया में आनुवंशिक रूप से संशोधित फसलों का सबसे बड़ा निर्यातक है, के दबाव के आगे घुटने टेक दिए हैं।

जीन कैंपेन की संस्थापक सुमन सहाय का मानना है कि कभी इसके सबसे बड़े खरीदार रहे चीन द्वारा अपनी खरीद में भारी कटौती करने के बाद अमेरिका को अपने सोयाबीन और मक्का के लिए बाजार की और भी सख्त जरूरत थी। सहाय कहती हैं, "ट्रंप अपने सोयाबीन और मक्का किसानों के बड़े राजनीतिक आधार को नाराज करने का जोखिम नहीं उठा सकते थे, जिसका नतीजा हम पर दबाव बना।"

आनुवंशिक रूप से परिवर्तित फसलें ऐसे पौधे हैं जिनके डीएनए को आनुवंशिक इंजीनियरिंग तकनीक के इस्तेमाल से बदला गया है ताकि उनमें कीटों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता और खरपतवारनाशकों तथा जलवायु तनाव के प्रति सहनशीलता जैसे नए गुण विकसित किए जा सकें। यह तकनीक पारंपरिक प्रजनन से भिन्न है, जिसमें कई पीढ़ियों तक एक ही फसल के व्यापक परिवार के भीतर जीनों का मिश्रण किया जाता है।

विशेषज्ञों का मानना है कि समझौते में प्रवेश करते वक्त भारत ने कई देशों द्वारा अपनाए गए 'एहतियाती सिद्धांत' तक की अनदेखी की, जो आनुवंशिक रूप से संशोधित फसलों की खेती और प्रवेश पर रोक लगाते हुए पर्यावरण और स्वास्थ्य एवं सुरक्षा उपायों को प्राथमिकता देता है। इससे भी महत्वपूर्ण यह कि हम इस तथ्य को नजरअंदाज कर रहे हैं कि भारत कई फसलों का उद्गम और आनुवंशिक विविधता का केन्द्र है। नियामक बार-बार जीन प्रवाह, जैव विविधता हानि और दीर्घकालिक पारिस्थितिक प्रभाव से संबंधित जोखिमों का हवाला देते रहे हैं।

चौंकाने वाली बात यह है कि आनुवंशिक रूप से संशोधित खाद्य उत्पादों के अप्रत्यक्ष प्रवेश के भयावह परिणामों को लेकर नागरिक समाज काफी हद तक खमोश रहा है। सवाल है कि क्या वाणिज्य और उद्योग मंत्री पीयूष गोयल के इसके विपरीत दिए गए आश्वासनों पर वे इतनी आसानी से भरोसा कैसे कर सकते हैं?

*

भारत लगभग 13.5 करोड़ टन सोयाबीन और लगभग 42 करोड़ टन मक्का का उत्पादन करता है, जिसमें से 20 प्रतिशत का इस्तेमाल ईंधन-ग्रेड इथेनॉल बनाने में होता है। मक्का उत्पादन में आत्मनिर्भर होने के बावजूद, भारत खाना पकाने के लिए सोया तेल का आयात करता है क्योंकि उसके पास खाद्य तेल प्रसंस्करण के लिए वांछित बुनियादी ढांचे की कमी है। सोया और मक्का उत्पादक किसानों की शिकायत है कि सरकारी स्तर पर पर्याप्त मात्रा में खरीद न होने और व्यापारियों द्वारा निर्धारित न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) से काफी कम कीमत मिलने के कारण दोनों फसलों की कीमतें गिरी हुई हैं। नतीजा यह कि उनकी उत्पादन लागत भी पूरी नहीं हो पा रही है।

किसान चिंतित हैं कि अगर अमेरिकी सामान भारतीय बाजार में आ गया तो ये नुकसान और बढ़ जाएंगे। इसका सीधा असर उनके निर्यात बाजार पर पड़ेगा। भारत से सोयाबीन और मक्का अंतरराष्ट्रीय बाजार में इसलिए बेचे जा रहे हैं, क्योंकि ये दोनों ही मुख्य रूप से गैर-जीएमडी फसलें हैं। मध्य प्रदेश के एक सोयाबीन किसान ने कहा, "एक बार जब अमेरिकी सामान की बाढ़ आ जाएगी, तो इससे विदेशी खरीदारों के मन में मिलावट का संदेह पैदा होगा और वे शायद हमसे खरीदना बंद कर देंगे।"

किसान संगठनों की यह भी आशंका है कि 'अमेरिकी खाद्य और कृषि उत्पादों की एक विस्तृत श्रृंखला' के आयात पर शुल्क हटाने से भारतीय किसानों, बागवानों और तिलहन उत्पादकों को नुकसान होगा, पशु आहार और पशुधन बाजारों में विकृति आएगी और आयात पर निर्भरता बढ़ेगी। एक बार आनुवंशिक रूप से संशोधित फसलों का आयात शुरू हो जाने पर, यह महज सोया और मक्का तक ही सीमित नहीं रहेगा। अमेरिका में पहले से ही आनुवंशिक रूप से संशोधित सेब और मछली बाजार में उपलब्ध हैं, और भी कई उत्पाद आने वाले हैं। तो क्या प्रतिबंध हटने के बाद, क्या ये सभी आनुवंशिक रूप से संशोधित फसलें भारत में भी बेची जाएंगी?

भारत में बीटी कपास का अनुभव एक चेतावनी होनी चाहिए थी। अमेरिका के बाहर भारत मॉन्सेन्टो का सबसे बड़ा बाजार है और कपास के बीजों का 90 प्रतिशत हिस्सा हमारे देश में बिकता है। बीटी कपास को 2002 में किसानों को पैदावार में भारी वृद्धि के वादे के साथ बड़े धूमधाम से पेश किया गया था, लेकिन उन्हें जल्द ही निराशा हाथ लगी। बीज महंगे थे और इसने छोटे किसानों को कर्ज में डुबो दिया। बीटी कपास को नियमित मात्रा में पानी चाहिए होता है और यहां अनियमित वर्षा ने फसल चौपट कर दी। गुलाबी बॉलवर्म जैसे कीटों में कीटनाशकों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता विकसित हो गई, जिससे किसानों को कीटनाशकों का उपयोग बढ़ाना पड़ा। कम पैदावार और महंगी तकनीक ने किसानों की परेशानी और बढ़ा दी, और ताबड़तोड़ आत्महत्याएं सामने आईं।

कृष्णास्वामी मानते हैं कि अमेरिका ने जानबूझकर कई महीनों तक व्यापार समझौता रोके रखा ताकि भारत पर दबाव डालकर आनुवंशिक रूप से संशोधित फसलों को परोक्ष रूप से प्रवेश दिलवाया जा सके।

हालांकि अध्ययनों से यह साबित हो चुका है कि तेलों में मौजूद आनुवंशिक रूप से संशोधित डीएनए प्रसंस्करण के कारण गायब नहीं होता है, लेकिन पीयूष गोयल ने प्रेस कॉन्फ्रेंस में सोया तेल के आयात को यह कहकर उचित ठहराया कि "जब किसी प्रसंस्कृत वस्तु का आयात किया जाता है, तो उसमें आनुवंशिक रूप से संशोधित डीएनए के प्रभाव नहीं रह जाते हैं"।

आशा-किसान स्वराज के राष्ट्रीय संयोजक किरणकुमार विस्सा कहते हैं, "मंत्री का बयान अवैज्ञानिक और अवसरवादी दोनों है। प्रत्येक उत्पाद के लिए जैव सुरक्षा मूल्यांकन आवश्यक है। इसीलिए हमारे पास वैधानिक नियामक ढांचा है। हम ट्रंप प्रशासन को खुश करने के लिए अपनी संसद द्वारा बनाए गए घरेलू कानूनों का उल्लंघन कर रहे हैं। यह सरासर घुटने टेकना है, और इसके चलते नागरिकों के हितों को ताक पर रख दिया गया है। यह 'अंतरिम समझौता ढांचा' भारतीय कृषि को खोलने का पहला चरण है, जिसके बाद भविष्य में कई और फसलों और पशु उत्पादों को भी इसमें शामिल किया जाएगा, जबकि दावा संरक्षण का किया जा रहा है। ■

> हम ट्रंप प्रशासन को खुश करने के लिए अपनी संसद द्वारा बनाए गए घरेलू कानूनों का उल्लंघन कर रहे हैं। यह सरासर घुटने टेकना है, और इसके चलते नागरिकों के हितों को ताक पर रख दिया गया है

16वें वित्त आयोग की रिपोर्ट

दक्षता पर जोर से समता का भाव कमजोर होगा?

अजित रानाडे

फोटो: गेटी इमेजेज

असमानता यह व्यवस्था की मार है जिसमें किसी के पास सब कुछ है और किसी के पास कुछ भी नहीं

भारत का वित्तीय संघवाद छद्म तोलमोल पर चलता है: केन्द्र ज्यादातर बड़े आधार वाले कर इकट्ठा करे जबकि राज्य जरूरी सार्वजनिक सेवाओं- स्कूल, अस्पताल, पुलिसिंग, स्थानीय सड़कों, पानी की सप्लाई और ऐसे तमाम कामों की जिम्मेदारी उठाएं। लेकिन कर राजस्व और जिम्मेदारी पर आने वाले खर्चे में मेल नहीं। असल में, राज्य दो-तिहाई खर्चे के लिए जवाबदेह हैं, लेकिन उनका नियंत्रण सिर्फ एक-तिहाई राजस्व पर होता है। इसलिए संविधान ने वित्त आयोग के रूप में एक न्यूट्रल रेफरी बनाया, जो समय-समय पर सलाह देता है कि केन्द्रीय कर के 'विभाज्य पूल' का केन्द्र और प्रदेशों और फिर विभिन्न प्रदेशों के बीच कैसे बंटवारा हो।

वित्त आयोग का हर पांच साल में नए सिरे से गठन किया जाता है ताकि बंटवारे का फॉर्मूला हमेशा के लिए नियत होने के बजाय बदलती स्थितियों के हिसाब से तय किया जा सके। व्यवहार में वित्त आयोग के अवॉर्ड भारतीय संघवाद का वित्तीय 'ऑपरेटिंग सिस्टम' बन जाते हैं। वे राज्यों को मिलने वाले हर महीने के नकद, जनहित के लिए बजट और पूंजीगत व्यय और यहां तक कि उधार लेने की उनकी क्षमता पर भी असर डालते हैं।

16वें वित्त आयोग की रिपोर्ट अब केन्द्र सरकार द्वारा स्वीकार कर ली गई है और इसे संसद में रखा जा चुका है। नया फॉर्मूला 2026-31 के लिए केन्द्र-राज्य के वित्तीय रिश्तों को आकार देगा। मुख्य सवाल सिर्फ यही नहीं है कि 'किसे कितना मिलता है', बल्कि यह है कि व्यवस्था क्या इंसेंटिव देता है- खासकर ऐसे संघ में जहां खुशहाली और राजनीतिक ताकत का बंटवारा समान नहीं।

16वें वित्त आयोग ने पिछले आयोग की तरह, विभाज्य पूल में राज्यों का हिस्सा 41 फीसद बनाए रखा है। 22 राज्यों की मांग थी कि राज्यों का हिस्सा बढ़ाकर 50 फीसद किया जाए। यह कुछ हद तक सेस और सरचार्ज पर केन्द्र की बढ़ती निर्भरता के ट्रेंड को लेकर उनकी शिकायत की वजह से था, जो विभाज्य पूल से बाहर होते हैं और इसलिए इनमें भागीदारी नहीं की जाती। 16वें आयोग की रिपोर्ट के मुताबिक, चूंकि इस आयोग के दौरान विभाज्य पूल का कुल आकार 55 खरब रुपये से करीब दोगुना बढ़कर 90 खरब रुपये हो जाएगा, इसलिए राज्यों के पास काफी ज्यादा संसाधन होंगे। लेकिन अगर केन्द्र गैर-विभाज्य लेवी को बढ़ाना जारी रखता है, तो 41 फीसद असल में इससे कम लग सकता है।

16वें वित्त आयोग की नई पहल है 10 फीसद वेटेज के साथ एक मानदंड के तौर पर 'राष्ट्रीय जीडीपी में योगदान' को अपनाना। आयोग ने इसके लिए दूसरे मदों का वेटेज घटाया है- प्रति व्यक्ति आय में फासले और जनसांख्यिकीय प्रदर्शन में 2.5-2.5 परसेंटेज पॉइंट्स की कटौती की गई है जबकि क्षेत्र के लिए 5 परसेंटेज प्वाइंट्स की कमी की गई। ऐसा लगता है जैसे आयोग अब संसाधन में कमी को पूरा करने की अपनी केन्द्रीय भूमिका से हटते हुए उस व्यवस्था की ओर बढ़ रहा है जिसमें उन राज्यों के लिए पुरस्कार होगा जो राष्ट्रीय आउटपुट में ज्यादा योगदान करेंगे।

यह इतनी बड़ी बात क्यों है? क्योंकि इससे राजस्व हस्तांतरण की नैतिक भाषा बदल जाती है। दशकों तक, मुख्य तर्क यह था: राज्यों को आय और क्षमता में अंतर के बावजूद समान बुनियादी सेवा देने में मदद करना और संरचनात्मक नुकसान की भरपाई करना। अर्थशास्त्री इसे 'इक्वलाइजेशन' या बराबरी कहते हैं। नए जीडीपी-योगदान मानदंड का संदेश साफ है- प्रदर्शन और योगदान भी मायने रखते हैं। वैसे, यह संविधान की भावना के खिलाफ नहीं है, लेकिन प्रमुखता देने के मामले में यह बहुत बड़ा बदलाव है। संवैधानिक रूप से, वित्त आयोग विभाज्य कर के सही बंटवारे की सिफारिश करता है ताकि सरकार के अलग-अलग स्तर संविधान में दी गई जिम्मेदारियों को पूरा कर सकें। वित्त आयोग ने कई तरह के मानदंडों का इस्तेमाल किया है - कुछ समता (आय का अंतर, आबादी, इलाका, जंगल) पर आधारित हैं और कुछ जो दक्षता (कर, वित्तीय अनुसासन, डेमोग्राफिक प्रदर्शन) को महत्व देते हैं।

> 'जीडीपी में योगदान' को कर बंटवारे का आधार बनाना संविधान के खिलाफ तो नहीं है, लेकिन ऐसा करने से संपन्न राज्यों के हिस्से ज्यादा राजस्व आएगा और गरीब उपेक्षित रह जाएंगे। जबकि पहले तर्क था: राज्यों को आय और क्षमता में अंतर के बावजूद समान सेवा देने में मदद करना

इसलिए, 'जीडीपी में योगदान' जोड़ना अपने आप में गैर-कानूनी नहीं है। लेकिन गहरा सवाल मानदंड से जुड़ा है: कर हस्तांतरण का मुख्य मकसद क्या होना चाहिए? जीडीपी में योगदान को जोड़ना राजस्व-अशक्तता के तर्क के खिलाफ होगा। इसके अलावा, सभी राज्य एक जैसे नहीं हैं। एक अमीर राज्य के पास अक्सर बेहतर इंफ्रास्ट्रक्चर और इंस्टीट्यूशन होते हैं, जिससे उनके लिए 'प्रदर्शन इंसेंटिव' का फायदा उठाना आसान होता है जबकि एक गरीब राज्य चाहकर भी ऐसा जल्दी नहीं कर पाता है। नई व्यवस्था से यह अंतर और गहराएगा। कुछ तथाकथित पिछड़े राज्यों को अपना वन कवर बनाए रखने और शहरीकरण की रफ्तार धीमी करने के लिए इंसेंटिव दिया जाता है, जिससे जीडीपी वृद्धि धीमी हो जाती है। 'योगदान' के लिए पुरस्कार देने से राजस्व कुछ राज्यों के हिस्से में ज्यादा चला जाएगा, जब तक कि पिछड़े राज्यों में क्षमता और मानव पूंजी में निवेश करके इसकी भरपाई न की जाए।

16वें वित्त आयोग की रिपोर्ट इस बात पर जोर देती है कि बराबरी नीतिगत केन्द्र में बनी हुई है जिसमें प्रति व्यक्ति आय का अंतर अब भी हावी है। लेकिन इंसेंटिव मायने रखते हैं क्योंकि वे राजनीतिक नैरेटिव और प्रशासनिक पसंद पर असर डालते हैं।

इसके तीन संभावित असर हो सकते हैं। पहला, भारत के दक्षिण और पश्चिम के कुछ हिस्सों में नाराजगी कम हो सकती है, जहां यह तर्क दिया जाता है: 'हम ज्यादा योगदान करते हैं, फिर भी हमारा हिस्सा कम होता जा रहा है।' दूसरा, पिछड़ रहे राज्यों को मिल रही 'अंतर पाटने' की सुविधा कमजोर हो जाएगी। अगर उनमें यह डर बैठ जाए कि भावी वित्त आयोग 'प्रदर्शन' पर जोर बढ़ाते चले जाएंगे तो वे अन्य राहतों पर ज्यादा जोर दे सकते हैं- विशेष पैकेज, केंद्र प्रायोजित स्कीम, विवेकाधीन अनुदान। तीसरा, बातचीत 'जरूरत' से 'मेरिट' पर शिफ्ट हो सकती है। यह राजनीतिक रूप से असरदार है और सहकारी संघवाद के लिए खतरा क्योंकि गरीब इलाकों को लगेगा कि सिस्टम अब सेफ्टी नेट नहीं देता।

कथित उत्तर-दक्षिण तनाव कम होगा या नहीं, यह दूसरे राजनीतिक और जनसांख्यकीय कारकों पर निर्भर करेगा। फिलहाल राजनीतिक गुरुत्व केन्द्र उत्तर और पूर्व में है, जबकि आर्थिक वजन दक्षिण में। इस संरचनात्मक असंतुलन को सिर्फ 16वें वित्त आयोग से ठीक नहीं किया जा सकता। मामले की संवेदनशीलता को देखते हुए, फॉर्मूले में कोई भी बदलाव बड़ी चिंताओं- प्रतिनिधित्व, आवाज, निष्पक्षता- की वजह बन जाता है। सेस और सरचार्ज जैसे अविभाज्य लेवी पर बढ़ती निर्भरता का मुद्दा अब भी अनसुलझा है। इसके अलावा, अगले वित्तीय वर्ष के लिए रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया से 3.1 खरब रुपये का बजट सरप्लस ट्रांसफर केन्द्रीय राजस्व का लगभग दस फीसद है; यह अविभाज्य है और इसमें लगातार वृद्धि हो रही है।

16वें वित्त आयोग भारत के वित्तीय संघवाद को सिर्फ 'अंतर पाटने' के नैरेटिव से हटाकर एक मिले-जुले मॉडल की ओर ले जाता है जो योगदान और वृद्धि को भी अहमियत देता है। कुछ हद तक यह केंद्र और राज्यों के बीच वित्तीय तोलमोल को राजनीतिक अखाड़ा बनने से रोकता भी है, लेकिन इसकी सफलता निष्पक्ष और पारदर्शी नियमों पर निर्भर करती है, और इस संदर्भ में अविभाज्य लेवी को बढ़ावा देना विपरीत असर डालने वाला है। भारत को एक भरोसेमंद इक्वलाइजेशन सिस्टम की जरूरत है ताकि हर नागरिक जन्मस्थान की परवाह किए बिना न्यूनतम गुणवत्ता वाली सार्वजनिक सेवाओं का इस्तेमाल कर सके और इसके साथ ही एक ऐसी प्रशासन संस्कृति की भी जो गरीब राज्यों को स्थायी तौर पर निर्भर बनाए बिना वृद्धि, सुधार और राजस्व बढ़ाने की कोशिशों को पुरस्कृत करे।

अगर यह संतुलन गड़बड़ा जाता है, तो हम सिर्फ परसेंटेज पर बहस नहीं करेंगे, हम सहकारी संघवाद के आइडिया पर बहस करेंगे ■

अजित रानाडे जाने-माने अर्थशास्त्री हैं। सौजन्य: द बिलियन प्रेस

गंगा लेगी तारिक रहमान का इम्तेहान

गंगा जल संधि दिसंबर में खत्म हो रही है। बदले जल प्रवाह ने शर्तों पर बातचीत को मुश्किल बना दिया है

अशोक स्वैन

चुनौती भारत-बांग्लादेश के बीच जल संधि पर बातचीत करना तारिक रहमान की विदेश नीति का पहला टेस्ट हो सकता है

बांग्लादेश नेशनलिस्ट पार्टी (बीएनपी) के दो-तिहाई बहुमत से चुनाव जीतने और तारिक रहमान के प्रधानमंत्री बनने के साथ देश में लगभग 35 सालों में पहली बार कोई पुरुष सरकार का मुखिया बना है। चुनावी नतीजे 15 साल से ज्यादा समय से शेख हसीना और अवामी लीग के दबदबे वाली राजनीतिक व्यवस्था में दरार दिखाते हैं।

उम्मीदें बहुत ज्यादा हैं और नए प्रधानमंत्री पर बहुत ज्यादा दबाव है। अंदरूनी तौर पर, रहमान को उस कानून-व्यवस्था को सुधारना है जिसमें पुलिस का बुरी तरह राजनीतिकरण हो चुका है, सरकारी संस्थाओं में लोगों का भरोसा फिर से कायम करना है और खस्ताहाल अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाना है।

उन्हें संविधान में भी सुधार करना होगा, लेकिन उनकी पार्टी के सांसदों ने विपक्षी जमात-ए-इस्लामी और नेशनल सिटिजन पार्टी (एनसीपी) के विरोध के बाद प्रस्तावित संविधान सुधार परिषद के सदस्य के तौर पर काम करने से मना कर दिया है। नवनिर्वाचित बीएनपी सांसदों का तर्क है कि परिषद को मौजूदा संविधान में शामिल नहीं किया गया है, और ऐसी किसी भी संस्था या सुधारों को पहले संसदीय प्रक्रिया के जरिये कानूनी तौर पर अपनाया जाना चाहिए।

देश से बाहर रहमान की सबसे बड़ी चुनौती अपने अहम और ताकतवर पड़ोसी भारत के साथ रिश्ते हैं क्योंकि दोनों देशों के अनसुलझे राजनीतिक और संरचनात्मक मुद्दे उनके प्रधानमंत्री पद के शुरुआती सालों को परिभाषित करने वाले हैं। सबसे बड़ी मुश्किल शेख हसीना की भारत में मौजूदगी को लेकर है। हसीना के राजनीतिक पतन और बांग्लादेश में उन्हें मौत की सजा मिलने के बाद, भारत में उन्हें शरण मिलते रहना प्रतीकात्मक के साथ-साथ व्यावहारिक रुकावट भी बन जाता है। हसीना के प्रत्यर्पण पर जोर देना बांग्लादेश में एक लोकप्रिय मांग हो सकती है लेकिन कूटनीतिक तौर पर यह बेकार ही होगा। खासकर ऐतिहासिक बाध्यताओं की वजह से भारत के उन्हें सौंपने की उम्मीद कम है। एक ज्यादा व्यावहारिक परिदृश्य, जिसे दोनों पक्ष चुपचाप मान लें, यह हो सकता है कि हसीना राजनीतिक गतिविधियों पर पाबंदियों के साथ भारत में रहें। लेकिन अगर इस संवेदनशील मुद्दे को औपचारिक समझौते के बजाय अदंरखाने सहमति से निपटाया जाता है, तो भी यह परस्पर अविश्वास का कारण बना रहेगा।

*

लेकिन, बांग्लादेश-भारत के रिश्तों का इससे मुश्किल इम्तिहान कहीं और है। 1996 में हस्ताक्षरित 30 साल की गंगा जल बंटवारा संधि दिसंबर 2026 में खत्म हो जाएगी। यह संधि पश्चिम बंगाल में फरक्का बैराज से सूखे मौसम (जनवरी-मई) में जल बंटवारे को नियंत्रित करती है। अगर यह समझौता खत्म हो जाता है, तो साल के इस नाजुक समय में बांग्लादेश में पानी की बहुत ज्यादा तंगी हो जाएगी। इसलिए, संधि के औपचारिक तौर पर खत्म होने तक इस विषय को हाशिए पर नहीं डाला जा सकता; किसी भी संकट को टालने के लिए पहले ही समझौता हो जाना चाहिए।

बांग्लादेश के लिए, इससे ज्यादा कुछ भी दांव पर नहीं। गंगा उसके लिए जीवन रेखा है जो देश के दक्षिण-पश्चिम के बड़े हिस्सों में खेती, मछली पालन, नौ-परिवहन, इकोसिस्टम और रोजी-रोटी को बनाए रखती है। 1975 में फरक्का बैराज के बनकर चालू होने के बाद से ही सूखे मौसम में पानी का बहाव कम हो जाने के कारण पहले से ही पैदावार में कमी, बायोडायवर्सिटी का नुकसान और सामाजिक-आर्थिक तनाव बना हुआ है। यह असर लगातार बढ़ने वाला और संरचनात्मक है। पानी की उपलब्धता में और कमी या इसकी उपलब्धता को लेकर लंबे समय तक अनिश्चितता बांग्लादेश में चिंता बढ़ाएगी और कमजोर ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर दबाव डालेगी।

भारत के लिए, खासकर मोदी सरकार के लिए, इसकी शर्तों पर फिर से तोलमोल करना राजनीतिक नजरिये से मुश्किल है। बांग्लादेश के साथ पानी का बंटवारा आधिकारिक तौर पर एक द्विपक्षीय मामला है, लेकिन असल में यह भारत की संघीय राजनीति से गहराई से जुड़ा है।

फरक्का बैराज पश्चिम बंगाल में है और अपस्ट्रीम से पानी निकालने को प्रभावित करने वाले किसी भी समझौते में उसकी बड़ी भूमिका है। बांग्लादेश जिस तरह के जल बंटवारे को सही मानता है, उसके लिए पश्चिम बंगाल सरकार की सहमति लेना पहले से ही कम मुश्किल नहीं रहा है, और मौजूदा राजनीतिक हालात में, जब राज्य के विधानसभा के चुनाव होने ही वाले हैं, यह और भी मुश्किल हो सकता है।

एक और बात है। मोदी सरकार की आदत है कि वह क्षेत्रीय जल सहयोग के बजाय अपने देश में अल्पकालिक राजनीतिक फायदों को प्राथमिकता देती है, खासकर अगर उसे लगे कि पड़ोसी देशों को रियायतें न देने से राज्यों में चुनावी फायदा मिल सकता है।

*

गंगा की बदलती जल प्रकृति को देखते हुए भावी बातचीत और भी मुश्किल हो जाती है। सीमा के दोनों तरफ आबादी बढ़ने और विकास की वजह से पानी की मांग तेजी से बढ़ी है, जबकि जलवायु परिवर्तन ने गंगा के प्रवाह को लेकर नई अनिश्चितताएं पैदा कर दी हैं। बदलते मॉनसून पैटर्न, बारिश में बढ़ोतरी, हिमालय में ग्लेशियर का पीछे खिसकना और बार-बार होने वाली चरम घटनाएं, ये सब नदी के जल विज्ञान को बदल रही हैं।

1996 की गंगा जल संधि ने 1949 से 1988 तक के औसत जल प्रवाह के आधार पर भारत और बांग्लादेश के बीच पानी का बंटवारा किया था। तब से, गंगा में पानी का प्रवाह काफी कम हो गया है। आईआईटी गांधीनगर के शोधकर्ताओं के एक हालिया अध्ययन से पता चलता है कि 1980 से सिंधु बेसिन में सालाना जल प्रवाह आठ फीसद बढ़ा है, जबकि गंगा बेसिन में 17 फीसद की गिरावट आई है। पहले की बातचीत और 1996 की संधि का आधार बने जल प्रवाह को आज भी वैसे ही स्वीकार नहीं किया जा सकता।

बांग्लादेश के नजरिये से यह एक पुरानी चिंता को और मजबूत करता है। 1996 की संधि को एक कूटनीतिक कामयाबी के तौर पर लिया गया था, लेकिन तब की संधि एक राजनीतिक सोच से हुई थी। दोनों देशों को पुराने प्रवाह डेटा से जुड़े आवंटन फॉर्मूले में बांधते हुए, संधि ने जलवायु परिवर्तन को ध्यान में रखते हुए अपनाया जा सकने वाला एक बेसिन-आधारित फ्रेमवर्क नहीं बनाया। जैसे-जैसे जलवायु का दबाव बढ़ेगा, यह फॉर्मूला बोझ बन जाएगा, जिससे बांग्लादेश के निचले हिस्से में ऐसे जोखिम पैदा होंगे जिन्हें पैदा करने में उसका कोई हाथ नहीं।

इस रास्ते पर चलते हुए, तारिक रहमान को रणनीतिक स्पष्टता, राजनीतिक हिम्मत और कूटनीतिक स्किल की जरूरत होगी। शेख हसीना के उलट, वह संरचनात्मक मतभेदों को सुलझाने के लिए नई दिल्ली के साथ निजी तालमेल या वैचारिक समानता वाला भरोसा नहीं कर सकते। उनकी सरकार को बांग्लादेश की जल सुरक्षा संबंधी चिंताओं को मजबूत लेकिन सकारात्मक तरीके से बताना होगा और ऐसा करते समय राष्ट्रवादी उकसावे से बचना होगा और साथ ही ऐसी व्यवस्था को स्वीकारने से मना भी करना होगा जो कमजोरी को बनाए रखते हों। राजनीतिक तौर पर, रहमान के लिए 1996 में शेख हसीना द्वारा की गई संधि की तुलना में बांग्लादेश के लिए कम फायदेमंद समझौते को स्वीकार करना आत्मघाती होगा।

गंगा बेसिन में दीर्घकालिक जल सुरक्षा डेटा साझा करने, संयुक्त निगरानी, लचीली आवंटन व्यवस्था और जल प्रबंधन के लिए सहयोगपूर्ण रुख पर निर्भर करती है। क्या मोदी सरकार, जो अक्सर दीर्घकालिक क्षेत्रीय स्थिरता और राष्ट्रहित के बजाय देश में अल्पकालिक राजनीतिक फायदे के लिए ज्यादा प्रतिबद्ध दिखती है, इस दिशा में आगे बढ़ने को तैयार है, यह एक खुला सवाल है।

मौजूदा जल समझौते की समीक्षा करने या उन्हें हथियार बनाने की धमकियां भारत के व्यापक क्षेत्रीय व्यवहार का हिस्सा बन गई हैं। ऐसे माहौल में जहां सिंधु जल संधि को निलंबित कर दिया गया है, नई दिल्ली को गंगा के लिए ज्यादा सहयोगपूर्ण और स्वीकार्य फ्रेमवर्क अपनाने के लिए मनाना बहुत मुश्किल होगा। फिर भी ऐसा न करने पर इसकी कीमत चुकानी पड़ेगी। बातचीत में नाकामी से न केवल बांग्लादेश-भारत संबंधों को नुकसान होगा बल्कि दक्षिण एशिया की क्षेत्रीय स्थिरता भी कमजोर होगी।

गंगा जल बंटवारा संधि पर फिर से बातचीत, तारिक रहमान के प्रधानमंत्री के तौर पर शुरुआती कार्यकाल में विदेश नीति का सबसे अहम इम्तेहान होगा। व्यापार या सद्भावना के प्रतीकात्मक संकेतों से कहीं ज्यादा, यह दिखाएगा कि क्या वह भारत के साथ काम करने लायक रिश्ते बनाए रखते हुए बांग्लादेश के हितों की रक्षा कर सकते हैं। यह भारत की भी परीक्षा होगी कि वह एक जिम्मेदार क्षेत्रीय ताकत के तौर पर काम करने की इच्छा रखता है या फिर एक अड़ियल अपस्ट्रीम प्रभुतावादी जैसा सलूक करता है। ■

अशोक स्वैन स्वीडन की उप्साला यूनिवर्सिटी में पीस एंड कॉन्फ्लिक्ट रिसर्च के प्रोफेसर और इंटरनेशनल वॉटर कोऑपरेशन पर यूनेस्को चेयर हैं।

एनजीटी में होने चाहिए 51 सदस्य, हैं महज 5

साफ है कि सरकार कथित विकास के नाम पर पर्यावरण पर बुलडोजर चलाते रहना चाहती है

पंकज चतुर्वेदी

कार्रवाई नहीं अवैध कब्जे का शिकार छतरपुर का सबसे बड़ा किशोर सागर तालाब जिसे है मूल स्वरूप में आने का इंतजार

बुंदेलखंड में छतरपुर शहर के सबसे बड़े तालाब किशोर सागर से अवैध कब्जे हटाकर इसे मूल स्वरूप में लाने के लिए एनजीटी, भोपाल में मुकदमेबाजी को अब 15 साल हो गए हैं। एनजीटी ने 7 अगस्त 2014 को तालाब के मूल रकवा, भराव क्षेत्र और 10 मीटर के ग्रीन जोन को कब्जामुक्त करने का आदेश दिया। इसका अनुपालन नहीं होने पर एनजीटी ने 20 सितंबर 2021 को छतरपुर जिला न्यायालय को इस पर कार्रवाई करने को कहा। द्वितीय अपर जिला न्यायाधीश ने 8 अक्तूबर 2023 को एनजीटी के आदेशानुसार कब्जा हटाने को जिला प्रशासन को कहा। कब्जा उसी तरह बरकरार है और कार्रवाई का अब भी इंतजार ही है।

इसके बरक्स एक ताजा उदाहरण भी। 2013 में यूनेस्को के जैवमंडल कार्यक्रम (ह्यूमन एंड बायोस्पियर प्रोग्राम) में शामिल, दुनिया में सबसे अच्छी तरह से संरक्षित उष्णकटिबंधीय वर्षा वनों में से एक और इंडोनेशिया तथा थाईलैंड के पास के ग्रेट निकोबार द्वीप समूह को लगभग 94,000 करोड़ रुपये से विकसित करने की सरकारी योजना को एनजीटी, कोलकाता ने 16 फरवरी को हरी झंडी दे दी है। यहां धरती की सबसे पुरानी आदिवासी आबादी के करीब 8,000 लोग रहते हैं। तटीय गांवों- खास तौर पर, चिनगेनह, पुलो बाहा, और कोकेओन- में रहने वालों को 2004 में सुनामी की वजह से विस्थापित कर दिया गया था, पर वे अपने मूल आवास पर अब कभी नहीं लौट पाएंगे। यहां ट्रांसशिपमेंट कंटेनर पोर्ट, एक बड़ा टाउनशिप, एक ग्रीनफील्ड एयरपोर्ट, तथा गैस और सौर ऊर्जा संयंत्र के निर्माण होंगे और बाहर से लाए जाने की वजह से यहां की आबादी बढ़कर लगभग 6.5 लाख हो जाएगी। यहां 130 वर्ग किलोमीटर के जंगल काटे जाएंगे और उसकी भरपाई हरियाणा या मध्य प्रदेश में पेड़ लगाकर की जाएगी।

सतही तौर पर परस्पर विरोधी दिखने वाले लेकिन वस्तुतः एक ही नतीजे वाले इन आदेशों को किस तरह देखना चाहिए? पहले आदेश में सरकार एनजीटी के आदेश का पालन नहीं कर रही है; दूसरे में एनजीटी को सरकार की यह मंशा नहीं दिख रही कि वह विकास के नाम पर पर्यावरण पर बुलडोजर चला रही है। तो, क्या एनजीटी, मतलब राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण 'बगैर नाखून-दांत' के हो गई है? दुर्भाग्यवश, हो तो यही गया है।

आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड के बाद भारत तीसरा ऐसा है जहां 2010 में इस तरह की विशेषज्ञ अदालत बनाई गई। उद्देश्य स्पष्ट था- पर्यावरण से जुड़े जटिल कानूनी विवादों का त्वरित निपटारा करना ताकि सरकार या बड़ी कंपनियां मनमाने तरीके से ऐसी परियोजनाओं को आगे न बढ़ा सके जिससे यहां की प्रकृति को नुकसान पहुंचे और वह उच्च न्यायालयों पर बढ़ते मुकदमों के बोझ को भी कम करे। लेकिन आज डेढ़ दशक बाद, यह संस्थान खुद ऐसे 'प्रदूषण' से जूझ रहा है जिसे 'प्रशासनिक शिथिलता' कहा जा सकता है। संसद में हाल ही में पेश किए गए आंकड़े चौंकाने वाले भी हैं।

एनजीटी की कुल स्वीकृत सदस्य संख्या 41 होनी चाहिए, वहीं वर्तमान में यह संस्थान केवल 5 सदस्यों के भरोसे चल रहा है, मतलब अपनी पूरी क्षमता का मात्र 12 प्रतिशत हिस्सा ही। इन 5 सदस्यों के कंधों पर 5,639 लंबित मामलों का बोझ है, मतलब मोटे तौर पर हर सदस्य के जिम्मे औसतन 1,100 से अधिक मामले। यह तब है जबकि संविधान का अनुच्छेद 21 हर व्यक्ति को न केवल जीवन का अधिकार देता है, बल्कि गरिमामय जीवन के अंग के रूप में 'स्वच्छ पर्यावरण' के अधिकार को भी समाहित करता है। सर्वोच्च न्यायालय ने 'सुभाष कुमार बनाम बिहार राज्य' जैसे कई मामलों में स्पष्ट किया है कि प्रदूषण मुक्त जल और वायु का अधिकार एक मौलिक अधिकार है। जब एनजीटी में सदस्य ही नहीं होंगे, तो इस मौलिक अधिकार की रक्षा कौन करेगा?

> 5,639 मामले केवल फाइलें नहीं हैं, ये नदियां हैं, जंगल हैं और हवा है। यह ऐसा पारिस्थितिकीय घाव छोड़ रही हैं, जिनकी भरपाई कोई भी आर्थिक विकास नहीं कर पाएगा

यह भी ध्यान रखने की बात है कि एनजीटी की संरचना में 'न्यायिक सदस्यों' और 'विशेषज्ञ सदस्यों' का संतुलन अनिवार्य है। विशेषज्ञ सदस्य वे होते हैं जिनके पास पर्यावरण विज्ञान, वन संरक्षण या प्रदूषण नियंत्रण में लंबा अनुभव होता है। वर्तमान में रिक्तियों का सबसे बड़ा प्रहार इसी विशेषज्ञता पर पड़ा है। जब क्षेत्रीय पीठें- जैसे, चेन्नई, पुणे, कोलकाता और भोपाल- सदस्यों के अभाव में पंगु हो जाती हैं, तो दिल्ली स्थित प्रधान पीठ को वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से इन राज्यों की सुनवाई करनी पड़ती है। तकनीक का उपयोग निश्चित तौर पर करना चाहिए, पर पर्यावरण जैसे संवेदनशील मामलों में अक्सर 'स्पॉट इनस्पेक्शन' (मौके पर मुआयना) और स्थानीय पारिस्थितिकी की सूक्ष्म समझ की जरूरत होती है। ऐसे में, दूर बैठकर की गई सुनवाई से काम नहीं चलने वाला।

एनजीटी के कमजोर होने के नुकसान को कई तरीके से समझा जा सकता है। दिल्ली में यमुना के डूब क्षेत्र में होने वाले अतिक्रमण या अवैध निर्माण के मामले हों या गुजरात में 'स्टैच्यू ऑफ यूनिटी' के पास नर्मदा के जलग्रहण क्षेत्रों में पर्यावरण नियमों के उल्लंघन या तटीय नियामक क्षेत्र (सी आर जेड) के नियमों की अनदेखी का मामला हो या फिर, दक्षिण भारत में पश्चिमी घाट के संरक्षण से जुड़ी कस्तूरीरंगन समिति की रिपोर्ट को लागू करने और उससे जुड़ी याचिकाओं पर सुनवाई के मामले हों- निर्माण कार्यों पर स्थगन आदेश देने में या उसकी वैधता तय करने में वर्षों की देरी होने से कंक्रीट का ढांचा खड़ा हो चुका होता है और नदी के पारिस्थितिक तंत्र को होने वाली क्षति 'स्थायी' हो जाती है। जब अवैध रेत खनन या औद्योगिक कचरा बहाने वाली कंपनियों के खिलाफ मामले वर्षों तक लटके रहते हैं, तो उन्हें एक तरह की 'मौन स्वीकृति' मिल जाती है। इससे न केवल पर्यावरण को नुकसान होता है, बल्कि उन ईमानदार उद्योगों का भी मनोबल टूटता है जो नियमों का पालन करते हैं।

इस किस्म के अनगिनत उदाहरण हैं। 'आर्ट ऑफ लिविंग' द्वारा दिल्ली में यमुना तट पर आयोजित विश्व सांस्कृतिक महोत्सव मामले में भले ही जुर्माना लगाया गया, लेकिन विशेषज्ञों का मानना है कि सुनवाई और प्रक्रिया में लगने वाले समय के कारण वह जमीन आज भी अपनी मूल प्राकृतिक स्थिति में नहीं लौट पाई है। इसी तरह, गोवा में मोपा हवाई अड्डे के निर्माण से जुड़े पर्यावरणीय क्लीयरेंस के मामले में सुप्रीम कोर्ट को तब हस्तक्षेप करना पड़ा जब एनजीटी की प्रक्रिया में लंबा समय लगा। सुप्रीम कोर्ट ने 'हनुमान लक्ष्मण अरोस्कर बनाम भारत संघ' मामले में स्पष्ट रूप से कहा था कि पर्यावरण की रक्षा 'सावधान पूर्ववर्ती' पर आधारित होनी चाहिए। यह सिद्धांत कहता है कि यदि पर्यावरण को गंभीर या अपूरणीय क्षति का खतरा है, तो वैज्ञानिक निश्चितता की कमी को सुरक्षात्मक कदम उठाने में देरी का बहाना नहीं बनाया जाना चाहिए। लेकिन जब जज ही नहीं होंगे, तो यह सिद्धांत केवल कानूनी किताबों तक सीमित रह जाएगा।

एनजीटी में सदस्यों की नियुक्ति में आनाकानी को लेकर सरकार का तर्क है कि डिजिटल बुनियादी ढांचे और ई-फाइलिंग से निपटान दर बढ़ेगी। लेकिन यह तर्क वैसा ही है जैसे किसी अस्पताल में ऑनलाइन अपॉइंटमेंट सिस्टम और डॉक्टरों के बिना केवल आधुनिक मशीनों के भरोसे इलाज का दावा। तकनीक प्रक्रिया को सुगम बना सकती है, लेकिन वह उस 'न्यायिक विवेक' का विकल्प नहीं हो सकती जो एक विशेषज्ञ सदस्य किसी प्रदूषणकारी इकाई की विस्तृत ईआईए (इनवायरनमेंटल इम्पैक्ट असेसमेंट- पर्यावरणीय आकलन अनुमान) रिपोर्ट पढ़ते समय इस्तेमाल करता है।

5,639 मामले केवल फाइलें नहीं हैं, ये सूखती हुई जीवनदायिनी नदियां हैं, कटते हुए फेफड़ेनुमा जंगल हैं और जहरीली होती हवा है। यह एक ऐसा पारिस्थितिकीय घाव छोड़ रही है, जिसकी भरपाई कोई भी आर्थिक विकास नहीं कर पाएगा। रिक्त पदों को भरना कोई प्रशासनिक उपकार नहीं, बल्कि आने वाली पीढ़ियों के प्रति नैतिक और संवैधानिक ऋण है। ■

फोटो: गेटी इमेजेज

उपेक्षा पता नहीं, वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण वित्त की वास्तव में कितनी चिंता करती हैं, पर पर्यावरण की अनदेखी हताश करती है

क्या है पर्यावरण के प्रति बेरुखी का सबब?

सवालों के घेरे में योजना और फंडिंग प्रक्रिया में पर्यावरण की अनदेखी

अभय शुक्ला

हमारे सालाना बजट में पर्यावरण संरक्षण को कभी भी प्राथमिकता नहीं दी गई। सभी वित्तमंत्रियों ने इसे हल्के में लिया और इसे ऐसी चीज माना ही नहीं जिसे स्थायी तरीके से पोषित करना और बड़ी ही सावधानी के साथ इस्तेमाल करना जरूरी है। इसके बजाय इसे एक असीमित संसाधन माना जिसका बस दोहन करते रहो। जुलाई 2014 में भी मैंने ब्लॉग में 2014 के बजट में पर्यावरण की उपेक्षा की ओर ध्यान दिलाया था।

तब से 11 साल बीत चुके हैं लेकिन योजना की यह खामी अब भी बरकरार है, बेशक तेजी से हो रहे जलवायु परिवर्तन के साथ इसमें एक और आयाम जुड़ गया हो। अब जलवायु परिवर्तन के असर को कम करने के लिए सरकारी फंडिंग ही पर्याप्त नहीं, बल्कि इससे सीधे तौर पर प्रभावित होने वाले लोगों - गरीब किसानों, जमीनहीन मजदूरों, मछुआरों, खानाबदोश जनजातियों - का पुनर्वास भी जरूरी विषय हो गया है। बदकिस्मती से (और जैसा अंदाजा भी था) यह बजट, पहले की तरह, इस दिशा में कुछ नहीं करता।

कुछ समय पहले जारी आर्थिक सर्वेक्षण 2026 से इस संदर्भ में कुछ ठोस की उम्मीद थी। लेकिन इसमें, मुख्य आर्थिक सलाहकार पर्यावरण की कीमत पर बेरोकटोक विकास और नव उदारवाद की तरफदारी करते दिखे। तमाम विज्ञान को धता बताते हुए वह कहते हैं कि कार्बन उत्सर्जन कम करना हमारी शीर्ष प्राथमिकता नहीं होनी चाहिए, और '3 डिग्री सेल्सियस की दुनिया रहने लायक होगी'(!) सारे सबूतों और वैश्विक वैज्ञानिक सहमति को गलत साबित करते हुए, वह कहते हैं कि 'विकास और खुशहाली से लचीलापन बढ़ता है और कमजोरी घटती है..', जो भारत में नहीं हो रहा है। अगर आर्थिक सलाहकार ने दावोस में साथी अर्थशास्त्री (बिना किसी राजनीतिक भेदभाव के), गीता गोपीनाथ की बातों पर ध्यान दिया होता, तो वह समस्या को बेहतर समझ पाते, और यह भी कि वह कितने गलत हैं।

यह सरकार सीआईडी (कम्प्लिसव इंफ्रास्ट्रक्चर डिसऑर्डर) के गंभीर रोग से जूझ रही है; कैपेक्स ठीक है और विकास के लिए जरूरी भी, लेकिन पर्यावरण भी उतना ही जरूरी है। तेज इंफ्रास्ट्रक्चर विकास की बड़ी पर्यावरणीय कीमत होती है। विश्व बैंक-मुद्रा कोष का अंदाजा है कि यह हमारी जीडीपी का 3.5-5 फीसद है, जो तकरीबन 200 अरब डॉलर या 180,000 करोड़ रुपये के बराबर है।

2026-27 के बजट में चार दक्षिणी राज्यों में खनिज कॉरिडोर (दुर्लभ खनिज के लिए) बनाने, तीन और हाई-स्पीड रेल कॉरिडोर, भारत की समुद्री सीमा में मछली वगैरह पकड़ने पर शून्य शुल्क, डेटा सेंटर बनाने के लिए टैक्स में छूट का बड़े गर्व से जिक्र किया गया है, लेकिन इसकी कोई बात नहीं है कि इनसे पर्यावरण पर पड़ने वाले असर को कैसे ठीक या कम किया जाएगा। क्या ये कॉरिडोर जरूरी हैं, यह देखते हुए कि पूरे देश में बड़ी संख्या में एक्सप्रेस-वे बन रहे हैं? इनके लिए बड़े पैमाने पर जमीन का अधिग्रहण होगा और लोगों को दूसरी जगह जाना पड़ेगा, जिससे आजादी के बाद 6 करोड़ 'परियोजना शरणार्थियों' की तादाद और बढ़ जाएगी।

लाखों पेड़ (और मैंग्रोव, क्योंकि दुर्लभ खनिज अमूमन तटीय इलाकों में पाए जाते हैं) काटे जाएंगे। समुद्री मछली पालन को बढ़ावा देना अच्छा है, लेकिन पारंपरिक मछुआरों की रोजी-रोटी को बचाने और उनकी जगह मशीन वाले ट्रॉलर न ले लें या ज्यादा मछली पकड़ने पर रोक लगाने वाले इंतजाम नहीं किए गए। डेटा सेंटर्स को बहुत ज्यादा बिजली-पानी की जरूरत होती है - पानी की कमी वाले देश में यह कैसे होगा?

जैसा कि ऊपर बताया गया है, अलग-अलग कॉरिडोर से पर्यावरण को खासा नुकसान होगा। वन संरक्षण अधिनियम, पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, वन्यजीव संरक्षण अधिनियम जैसे नियमों को कमजोर करने और नियामक संस्थाओं को दंतहीन बनाने से इस तरह की परियोजनाओं पर बेधड़क आगे बढ़ने की ही संभावना ज्यादा है।

इन परियोजनाओं के बुरे असर को कम करने और उसकी भरपाई के लिए हजारों करोड़ रुपये की जरूरत होगी, लेकिन वित्तमंत्री ने इस बारे में एक शब्द भी नहीं कहा कि इसके लिए फंड कैसे आएगा, कौन खर्च करेगा। यह चुप्पी और इस मामले में स्पष्टता न होना राज्यों पर खर्च को डालने की सोची-समझी रणनीति लगती है: राजनीतिक श्रेय और वित्तीय फायदे केन्द्र को मिलेंगे, लेकिन सामाजिक और बजटीय कीमत राज्यों को उठानी होगी - यह संघीय अवधारणा की नई ही व्याख्या है!

आखिर में, ऐसा लगता है कि 16वां वित्त आयोग भी इस देश की सभी तथाकथित स्वायत्त संस्थाओं की तरह केन्द्र सरकार के साथ कदम से कदम मिलाकर चल रहा है। क्योंकि हिमालयी राज्य पानी, साफ हवा, कार्बन सोखने के रूप में जो देश की पर्यावरणीय सेवा कर रहे हैं, उसके लिए मुआवजे के उनके अधिकार को पूरी तरह नजरअंदाज कर दिया गया है। इन राज्यों ने, जिन्हें कई एडवोकेसी समूहों का साथ मिला, 2026-2031 के पांच साल के दौरान 50,000 करोड़ रुपये के ग्रीन बोनस की मांग की थी। यह न सिर्फ सही मुआवजा होता, बल्कि इन फंड्स से उनके जंगलों, नदियों, खनिज और पर्यावरण संभावनाओं के बेरोकटोक दोहन के बिना उनकी विकास जरूरतें पूरी हो जातीं। कोई बेवकूफ भी देख सकता है कि हिमालय (और अरावली और पश्चिमी घाट जैसी दूसरी पर्वत श्रृंखलाओं) का अंधाधुंध 'विकास' देश के हित में नहीं और इसलिए इन पहाड़ी राज्यों को ऐसा न करने के लिए बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

लेकिन 16वां वित्त आयोग इस सामान्य-सी सच्चाई को समझ नहीं सका। शुरुआती रिपोर्टें बताती हैं कि उन्होंने कोई ग्रीन बोनस नहीं दिया है; न ही पर्यावरण पर पड़ने वाले असर को कम करने या आपदा राहत के लिए कोई विशेष अनुदान (जो अब पूरी तरह राजनीतिक हो गया है) दिया है। उन्होंने बस जंगलों की परिभाषा के साथ छेड़छाड़ की है, जो न सिर्फ वित्तीय संदर्भों में बेमतलब है, बल्कि इससे भी बुरी बात यह है कि आयोग ने अब राजस्व घाटा अनुदान (आरडीजी) बंद कर दिया है, जो इन राज्यों को 1974 से मिल रहा था और इस वजह से उनकी माली हालत पर खासा असर पड़ा है। अब उनके पास अपनी विकास गतिविधियों के लिए पैसे जुटाने के लिए हिमालय के नाजुक पर्यावरण को बर्बाद करते रहने के अलावा विकल्प नहीं होगा।

इस साल के बजट से भाजपा को फायदा होता है या नहीं, यह एक बहस का सवाल है; लेकिन जो बहस का सवाल नहीं है, वह यह है कि हमारी योजना और फंडिंग प्रक्रिया में पर्यावरण की 'आपराधिक अनदेखी' बदस्तूर जारी है। निर्मला सीतारमण और वित्त आयोग में उनके 'को-पायलट' ने हमें पर्यावरण पतन और कुछ राज्यों के वित्तीय पतन के थोड़ा और करीब ला दिया है। ■

> 16वें वित्त आयोग ने राजस्व घाटा अनुदान बंद कर दिया है, जो हिमालयी राज्यों को 1974 से मिल रहा था। इससे उनकी माली हालत खासी खराब हो गई। अब उनके पास विकास के पैसे जुटाने के लिए हिमालय के नाजुक पर्यावरण को बर्बाद करने के अलावा विकल्प नहीं

अभय शुक्ला सेवानिवृत्त आईएएस अधिकारी हैं।
यह avayshukla.blogspot.com से लिए उनके लेख का संपादित रूप है।

सुधार, जनमत संग्रह और मुश्किलें

जुलाई चार्टर पर मिली-जुली प्रतिक्रिया बांग्लादेश में राजनीतिक संघर्षों को और तीव्र करने का आधार तैयार करती है

सौरभ सेन

हालिया चुनावों में बांग्लादेश नेशनिलस्ट पार्टी (बीएनपी) की भारी जीत को विपक्षी जमात-ए-इस्लामी और नेशनल सिटिजन पार्टी (एनसीपी) के साथ एक लंबे टकराव की शुरुआत माना जा सकता है। इसका कारण जुलाई के जनमत संग्रह चार्टर का समर्थन करने के बावजूद बीएनपी का संविधान सुधार आयोग (सीआरसी) में शामिल होने से इनकार करना है, जो देश की राजनीति में दरार को उजागर करता है।

आम चुनाव और जनमत संग्रह एक साथ होने का नतीजा था कि निर्वाचित सांसदों को दो शपथ लेनी पड़ी- एक सांसद के रूप में और दूसरी सीआरसी सदस्य के रूप में। दूसरी शपथ के तहत सांसदों के लिए जुलाई चार्टर लागू करना अनिवार्य था। बीएनपी के एक वरिष्ठ नेता ने संडे नवजीवन को बताया, "सीआरसी सदस्य के रूप में शपथ लेने के बाद हम जुलाई चार्टर लागू करने के लिए बाध्य तो हैं ही, चार्टर के प्रमुख प्रावधानों पर हमारी असहमति भी दरकिनार हो जाती है।"

संविधान सुधार आयोग (सीआरसी) के गठन को औपचारिक संविधान से बाहर बताते हुए, बीएनपी की नीति-निर्माण स्थायी समिति के सदस्य और नव-निर्वाचित सांसद सलाहुद्दीन अहमद ने कहा, "हम संविधान सुधार आयोग के सदस्य के रूप में नहीं चुने गए हैं; परिषद के गठन को अभी संविधान में शामिल किया जाना बाकी है।"

फोटो: गेटी इमेजेज

जश्न ढाका में संसद परिसर में नए प्रधानमंत्री तारिक रहमान के शपथ ग्रहण समारोह में उपस्थित लोग

17 फरवरी की सुबह स्थिति तब और नाज़ुक हो गई जब जमात और एनसीपी के नवनिर्वाचित सदस्यों ने सांसद के रूप में शपथ लेने से इनकार कर दिया। जमात के उप-प्रमुख अब्दुल्ला मोहम्मद ताहिर ने कहा, "हम तब तक शपथ नहीं लेंगे जब तक बीएनपी सांसद नियमित सांसदों के साथ संविधान सुधार आयोग के सदस्य के रूप में शपथ नहीं लेते।" बंद दरवाजे के पीछे चली लंबी बातचीत के बाद उन्होंने दोहरी शपथ ली, लेकिन प्रधानमंत्री तारिक रहमान और उनकी कैबिनेट के शपथ ग्रहण का बहिष्कार किया। हालांकि, सत्तारूढ़ बीएनपी संविधान सुधार आयोग से बाहर ही रही।तो जमात और एनसीपी ने आखिर हार क्यों मान ली? ढाका-14 से नवनिर्वाचित जमात सांसद मीर अहमद बिन कासिम ने संडे नवजीवन को बताया, "शपथ न लेने का फैसला हमारी पार्टी का नहीं था। यह हमारे गठबंधन सहयोगियों और हमारे कुछ सदस्यों की अपनी राय रही होगी।" चर्चा सीआरसी को चुनौती देने की भी रही, जो भविष्य में एक लंबी कानूनी लड़ाई का संकेतक है।

*

5 अगस्त 2024 को शेख हसीना की अवामी लीग सरकार के पतन के बाद, मुहम्मद यूनुस के अंतरिम प्रशासन ने न सिर्फ एक नई लोकतांत्रिक सरकार के चुनाव की देखरेख का कार्यभार संभाला, बल्कि वंशवादी राजनीति समाप्त करने के लिए महत्वपूर्ण सुधार भी किए, भले ही वह अवामी लीग वाला मुजीबुर रहमान का खानदान हो या बीएनपी का जियाउर रहमान कुनबा। कई सुधार निकायों का गठन हुआ, जिनमें से एक राष्ट्रीय सर्वसम्मति आयोग (एनसीसी) था, जिसे जुलाई चार्टर के रूप में एक बाध्यकारी राजनीतिक घोषणा में सिफारिशों को समेकित करने का कार्य सौंपा गया था और जिस पर 17 अक्तूबर 2025 को 26 राजनीतिक दलों ने हस्ताक्षर किए थे।

61 पृष्ठों वाले जुलाई चार्टर में "विभिन्न राजनीतिक दलों, गठबंधनों और ताकतों के बीच आपसी और सामूहिक विचार-विमर्श के जरिये हासिल 'सर्वसम्मति' की बात कही गई थी, जिसका मकसद संविधान, चुनावी प्रणाली, न्यायपालिका, लोक प्रशासन, पुलिस प्रशासन और भ्रष्टाचार से निपटने वाले तंत्र में सुधार करना था।

13 नवंबर 2025 को राष्ट्रपति मोहम्मद शहाबुद्दीन चुप्पू ने बांग्लादेश चुनाव आयोग को जनमत संग्रह कराने को अधिकृत कर दिया। इसमें मतदाताओं से चार प्रमुख सुधारों वाला एक संयुक्त पैकेज स्वीकार या अस्वीकार करने को कहा गया था, जिसमें कार्यवाहक सरकार प्रणाली की बहाली; दो सदन वाली संसद की स्थापना; न्यायपालिका और चुनाव आयोग में सुधार; और प्रधानमंत्रियों का कार्यकाल दो बार तक सीमित करना शामिल था। 'हां' का मतलब था पूरा पैकेज स्वीकारना; 'नहीं' का मतलब सभी सुधारों को पूरी तरह नकारना।

> राजदूत मोहम्मद हुमायूं कबीर ने कहा- "17 फरवरी की सुबह जो हुआ, उसे टाला जा सकता था।" विपक्षी दल भले मान गए हों, लेकिन संविधान लागू होने से बीएनपी के भारी बहुमत के बावजूद मतभेद की गहरा सकता है

12 फरवरी के जनमत संग्रह के जरिये अपनाया गया यह चार्टर अब हस्ताक्षरकर्ताओं द्वारा 84 सुधार प्रस्तावों को लागू करने की एक राजनीतिक रूप से बाध्यकारी प्रतिज्ञा है, जिनमें से लगभग आधे प्रस्तावों के लिए बांग्लादेश के मौजूदा संविधान में संशोधन करना होगा। दूसरी शपथ लेने से इनकार करने पर, बीएनपी सांसद जुलाई चार्टर लागू करने के लिए अधिकृत नहीं होंगे।

जनमत संग्रह के नतीजे मिले-जुले रहे। चुनाव आयोग के आंकड़ों के अनुसार, कुल 60.25 प्रतिशत लोगों ने वोट डाले जिनमें से 62.74 प्रतिशत संविधान के समर्थन में थे, जबकि लगभग 30 प्रतिशत विरोध में। लगभग 9.5 प्रतिशत मतपत्र अमान्य पाए गए। खास बात यह कि 11 संसदीय क्षेत्रों में, जिनमें गोपालगंज और पहाड़ी जिलों जैसे गढ़ों के तीन क्षेत्र शामिल हैं, मतदाता 'नहीं' के साथ थे।

यह चार्टर बांग्लादेश की राष्ट्रीय पहचान को पुनर्परिभाषित करता है, जिसमें बंगाली से बांग्लादेशी में परिवर्तन का प्रस्ताव है, ताकि चकमा, मरमा और संथाल जैसे उन जातीय अल्पसंख्यकों को शामिल किया जा सके जो भाषाई रूप से परिभाषित पहचान से खुद को हाशिये पर महसूस करते थे। हालांकि बंगाली राज्य की प्रमुख भाषा बनी हुई है, लेकिन संविधान सभी मातृभाषाओं को मान्यता देता है। राष्ट्रवाद, लोकतंत्र, समाजवाद और धर्मनिरपेक्षता की मुजीब युग की चार विरासतों की जगह अब समानता, मानवीय गरिमा, सामाजिक न्याय और धार्मिक सद्भाव ने ले लिया है। चार्टर धर्मनिरपेक्षता और धर्म की स्वतंत्रता को "सह-अस्तित्व की गारंटी" और "सभी समुदायों के लिए उचित सम्मान" से बदल देता है।

अन्य परिवर्तनों में किसी व्यक्ति को एक साथ प्रधानमंत्री, सदन के नेता और पार्टी अध्यक्ष के रूप में कार्य करने से रोकना; मानवाधिकार, कानून और सूचना आयोगों के प्रमुखों की नियुक्ति के लिए राष्ट्रपति की शक्तियों का विस्तार करना शामिल है। यह संविधान आम चुनावों की देखरेख के लिए गैर-दलीय कार्यवाहक सरकार को पुनर्स्थापित करता है (जिसे 2011 में अवामी लीग द्वारा समाप्त कर दिया गया था) और प्रधानमंत्री कार्यालय को न्यायाधीशों की नियुक्ति से हटाकर, इसके बजाय मुख्य न्यायाधीश के नेतृत्व में एक न्यायिक नियुक्ति आयोग की स्थापना करता है।

डिजिटल ब्लैकआउट और 2024 के विद्रोह के युवा नेतृत्व को ध्यान में रखते हुए, यह चार्टर निर्बाध इंटरनेट सेवा को एक मौलिक अधिकार के रूप में मान्यता देता है, जिससे डिजिटल पहुंच को संवैधानिक स्तर का दर्जा मिल गया है। इसमें व्यक्तिगत जानकारी के अधिकार की भी स्पष्ट रूप से रक्षा की गई है। दो-तिहाई बहुमत वाली बीएनपी अब मानती है कि वह ऐसा चार्टर लागू करने के लिए बाध्य नहीं है, जो उसकी चिंताओं को पर्याप्त रूप से प्रतिबिंबित नहीं करता है। असहमति के नौ बिंदुओं में से, पार्टी ने उच्च सदन के सदस्यों के चुनाव के लिए आनुपातिक प्रतिनिधित्व के प्रावधान पर कड़ी आपत्ति जताई, क्योंकि उसे आशंका है कि इससे प्रमुख दलों का जनादेश कमजोर हो जाएगा। कुछ कार्यकर्ताओं और छात्र नेताओं ने भी चार्टर को "राजनीतिक समझौता" बताते हुए खारिज कर दिया है। परामर्श प्रक्रिया से अवामी लीग को एक पक्ष के तौर पर बाहर रखने से संविधान के समावेशी स्वरूप को भी नकार दिया गया है।

राजदूत मोहम्मद हुमायूं कबीर ने संडे नवजीवन से कहा- "17 फरवरी की सुबह जो कुछ हुआ, उसे टाला जा सकता था, क्योंकि इससे कोई अच्छा संदेश तो मिलता नहीं"। विपक्षी दल फिलहाल भले मान गए हों, लेकिन संविधान के लागू होने से संसद में बीएनपी के भारी बहुमत के बावजूद राजनीतिक मतभेद की दरारें और गहरा सकती हैं। ■

सौरभ सेन कोलकाता निवासी स्वतंत्र लेखक, राजनीति, मानवाधिकार और विदेश मामलों के टिप्पणीकार हैं।

मजहबों की बेड़ियां तोड़ीं नारियल के एक पेड़ ने

केरला के मल्लपरम जिले में चुपचाप सद्भाव के साथ जिंदगी जीने का व्याकरण आज भी है उतना ही मजबूत

सराहनीय (बाएं से) मस्जिद से बांटी जा रही राहत सामग्री, जिला पंचायत की वाइस प्रेसिडेंट बनी मुस्लिम लीग की हिन्दू दलित महिला, मंदिर में मुस्लिम श्रद्धालु और मंदिर में आयोजित इफ्तार

के.ए. शाजी

करीब चार दशक पहले, केरल के मुस्लिम-बहुल मलप्पुरम जिले के एक छोटे से गांव में, एक नारियल का पेड़ सांप्रदायिक चिंता और तनाव की अनोखी निशानी बन गया था।

यह पेड़ एक हिन्दू घर के अहाते में था, बगल की मस्जिद की तरफ झुका हुआ। हर चंद हफ्तों में कोई पका नारियल मस्जिद की टाइल वाली छत पर गिरता, टाइलें टूटतीं और बारिश का पानी अंदर आने लगता। मस्जिद कमिटी ने शिकायत की। हिन्दू परिवार ने पेड़ काटने से मना कर दिया क्योंकि नारियल से उनकी थोड़ी-बहुत कमाई हो जाती थी।

हर गिरते नारियल के साथ तनाव बढ़ता रहा। हिन्दू घर का बेटा अब हिन्दुत्व की तरफ झुकने लगा था। उसके लिए पेड़ अब सिर्फ पेड़ नहीं था। जब तनाव और बढ़ा, तो दोनों समुदायों के बुजुर्गों ने मामला सम्मानित मुस्लिम नेता, पनक्कड़ सैयद मोहम्मदअली शिहाब थंगल (1936–2009) के पास ले जाने का फैसला किया, जो इंडियन यूनियन मुस्लिम लीग (आईयूएमएल) के सुप्रीमो थे और जिनकी नैतिक मान्यता के प्रति सभी धर्मों-दलों में सम्मान था। थंगल ने दोनों पक्षों की बात सुनी। फिर, जेब से कुछ पैसे निकाल मस्जिद कमेटी के प्रेसिडेंट को दिए, और कहा, 'मस्जिद को गिराना होगा। मिट्टी की छत की टाइलों की जगह कंक्रीट लगानी चाहिए।'

मालाबार में एक मान्यता है, इसे आप अंधविश्वास भी कह सकते हैं, कि अगर किसी काम के लिए पहला दान थंगल से मिला तो उस काम को होना तय।

जब हिन्दू घर की बूढ़ी औरत को पता चला तो वह उसी रात भागी-भागी थंगल के पास गई, बेटे के किए की माफी मांगी और नारियल का पेड़ काटने का वादा किया। लेकिन थंगल ने यह कहते हुए उसकी पेशकश ठुकरा दी कि, 'नारियल का पेड़ हमारे जीवन का अमृत है। इसे हर कीमत पर बचाना चाहिए।' मस्जिद को कंक्रीट से बनाया गया। नारियल का पेड़ अब भी खड़ा है।

मलप्पुरम में इस कहानी को चमत्कार के तौर पर नहीं, बल्कि एक आसान उदाहरण के तौर पर याद करते हैं कि सामाजिक झगड़े कैसे सुलझाए जाने चाहिए।

पिछले साल, जब मलप्पुरम के पुन्नाथला गांव में श्री लक्ष्मी नरसिम्हा मूर्ति विष्णु मंदिर ने सैकड़ों मुसलमानों को इफ्तार दिया तो देशभर में सुर्खी बनी। टीवी ने सांप्रदायिक सद्भाव का अनोखा उदाहरण बताया। लेकिन मंदिर प्रशासन ने इसे दी जा रही अहमियत को बेवजह बताते हुए कहा कि वे तो दशकों से ऐसा कर रहे हैं।

मलप्पुरम के सामाजिक पर्यवेक्षक थोपिल शाहजहां कहते हैं, 'समय इतना बुरा आ गया कि पहले के आम सामाजिक कामों को भी सांप्रदायिक सद्भाव का अनोखा उदाहरण माना जाने लगा है।'

हाल ही में हुए निकाय चुनाव के नतीजे भी मलप्पुरम के खिलाफ फैलाई गई अफवाहों का करारा जवाब थे। कांग्रेस-आईयूएमएल गठबंधन ने जिला पंचायत के सभी वार्ड जीते, जिसमें सैकड़ों ईसाई और हिन्दू आईयूएमएल के टिकट पर जीते। गठबंधन समझौते के मुताबिक, वाइस-प्रेसिडेंट का पद आईयूएमएल को मिला- सामान्य सीट से जीती एक दलित हिन्दू महिला को। ऐसे जिले में जहां हिन्दुओं को खतरा बताया जाता है, वहां भी ज्यादातर हिन्दूओं ने मुस्लिम लीग और माकपा के मुस्लिम उम्मीदवारों के पक्ष में वोट दिया जिससे भाजपा को सिर्फ 65,000 वोट मिले। एक भाजपा उम्मीदवार का वोटरों से वादा करना कि अगर वह जीते तो उन्हें अच्छी क्वालिटी का बीफ मिलेगा, कैंपेन की एक मजेदार साइड स्टोरी बन गई।

> मलप्पुरम की असली कहानी उस नारियल के पेड़ में है, जिसे नहीं काटा गया। उस मस्जिद में है जिसे दोबारा बनाया गया। उस दलित महिला में है जो मुस्लिम लीग के टिकट पर वाइस-प्रेसिडेंट बनी। उस मंदिर में है जो बिना प्रचार इफ्तार कराता है

मलप्पुरम के रहने वाले और जाने-माने मलयालम लेखक आलमकोड लीला कृष्णन के मुताबिक मुस्लिम-बहुल (70.25 फीसद) मलप्पुरम 'बहुलवाद का दुनिया का बेहतरीन प्रयोग हो सकता है'। ब्रिटिश औपनिवेशिक नीतियों की वजह से 1921 में हुए मप्पिला विद्रोह के अलावा जिले में कोई बड़ा सांप्रदायिक संघर्ष नहीं हुआ। कृष्णन कहते हैं कि मलप्पुरम के मुस्लिम नेता हमेशा सांप्रदायिक सद्भाव के लिए खड़े रहे। बदले में, हिन्दुओं को स्थानीय नेता और जनहित के लिए उनकी प्रतिबद्धता पर पूरा यकीन है।

मलप्पुरम की रोजमर्रा की जिंदगी आपसी तालमेल और जिम्मेदारी की समझ को बयां करती है। यह 'मिनी-पाकिस्तान', 'जिहादी हब' जैसे नैरेटिव को धाराशायी करने की कहानी है। इन लेबलों का सियासी इस्तेमाल होता है, लेकिन वे यह नहीं बताते कि हिन्दू पुजारी मुस्लिमों से चंदा क्यों लेते हैं, मुस्लिम किसान मंदिर के लिए कमल के तालाबों की देखभाल क्यों करते हैं, मस्जिद के आंगन हजारों गरीब परिवारों के लिए, चाहे उनका धर्म कुछ भी हो, खाने-पीने का केंद्र क्यों बन जाते हैं।

*

मलप्पुरम कोई छोटी जगह नहीं। 2011 की जनगणना में यहां की आबादी 4,112,920 थी जिसमें 70.2 फीसद मुसलमान, 27.6 फीसद हिन्दू और 1-2 फीसद ईसाई थे। लगभग 44 फीसद लोग शहरी इलाकों में रहते हैं।

ये आंकड़े मददगार हैं, लेकिन वे रोजमर्रा के सामाजिक व्यवहार को नहीं समझाते जो यहां पड़ोसियों के साथ अच्छा व्यवहार करना आसान बनाते हैं।

मलप्पुरम में वलंचेरी के बाहरी इलाके में, मूनक्कल जुमा मस्जिद महीने में तीन बार महिलाओं की लंबी कतार के लिए अपना कंपाउंड खोलती है। हर औरत को चावल का महीने का कोटा मिलता है। कभी-कभी गेहूं और चीनी भी मिलती है जो मस्जिद कमेटी द्वारा चलाए जाने वाले एक बड़े कम्युनिटी स्टोर से बांटा जाता है। डोनेशन नमाज पढ़ने वालों से आता है। जो धार्मिक रिवाज के तौर पर अनाज खरीदकर देते हैं। मस्जिद के बाहर, चावल की दुकानों का एक समूह है जो ज्यादातर इसी रिवाज को पूरा करने के लिए है। अंदर, एक छोटी सी प्रोसेसिंग फैसिलिटी में इसकी पैकिंग होती है और फिर टोकन के हिसाब से तैयार बोरे बांटे जाते हैं। इसका फायदे लेने वालों में 21 पंचायतों के 28,000 से ज्यादा परिवार हैं, जिसमें हर धर्म के लोग हैं।

मस्जिद कमिटी के सदस्य के. अनफाल कहते हैं, 'इसके लिए धर्म कभी पैमाना नहीं रहा।' चावल लेने वाले आधे से ज्यादा परिवार हिन्दू और ईसाई हैं। कई स्थानीय लोग कहते हैं कि वे पीडीएस के बजाय मस्जिद के इंतजाम को ज्यादा पसंद करते हैं क्योंकि वहां क्वालिटी बेहतर होती है और क्वांटिटी एक समान।

एडक्कुलम गांव में, मुस्लिम किसान कमल के तालाबों की देखभाल करते हैं जो केरल के चंद सबसे मशहूर मंदिरों को पूजा के फूल सप्लाई करते हैं। पिछले साल, एडक्कुलम के परिवारों ने गुरुवायूर में तुलाभरम रस्म के लिए सौ किलो से ज्यादा कमल भेजे।

कोट्टक्कल में, पालप्पुरम मस्जिद का मिंबर आर्य वैद्यशाला के संस्थापक पी. एस. वारियर ने दिया। पनक्कड़ थंगल परिवार मलप्पुरम की सार्वजनिक जिंदगी में नैतिक सहारा देने वाले का काम करता है।

मुन्नियुर के कलियाट्टक्कवु भगवती मंदिर में, भक्त त्योहार का जुलूस शुरू करने से पहले सबसे पहले माम्बुराम थंगल के मकबरे पर जाते हैं। तिरुर के पास थुनचनपरम्बु में, जो थुनचथु एझुथाचन का जन्मस्थान है, 'विद्यारंभम' के दौरान हजारों बच्चों को, जिनमें मुस्लिम परिवारों के भी बच्चे होते हैं, अक्षर सिखाए जाते हैं और मुस्लिम दूध- नाश्ता बांटते हैं।

रोजमर्रा की जिंदगी के इन ताने-बाने के उलट, शक पैदा करने वाली सिसायत ने मलप्पुरम के स्थानीय मामलों को बार-बार देश में गलत रंग में प्रचारित करने की कोशिश की।

राष्ट्रीय राजनीति में 'मिनी-पाकिस्तान' बेवफाई के लिए इस्तेमाल की की जाने वाली अभिव्यक्ति बन गया है। 2020 में एक गर्भवती हथिनी की हत्या के बाद मलप्पुरम के बारे में तरह-तरह की बातें उड़ीं, जबकि यह घटना उस जिले में हुई भी नहीं थी। हाल ही में, सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी ऑफ इंडिया (एसडीपीआई) जैसे ऑर्गनाइजेशन के दफ्तर पर छापे को जमकर प्रचारित किया गया और फिर उसे गहरी साजिश के सबूत के तौर पर पेश किया गया।

जब अगस्त 2020 में कोझिकोड एयरपोर्ट पर एयर इंडिया एक्सप्रेस की फ्लाइट क्रैश हुई, तो स्थानीय लोग सबसे पहले मदद करने वाले थे। उन्होंने घायलों को ले जाने के लिए निजी कारों का इस्तेमाल किया, लोगों के सामान की सुरक्षा की, खून दिया और बचे लोगों के खाने का इंतजाम किया। किसी ने नहीं पूछा कि कौन हिन्दू था, कौन मुसलमान। 2001 के कडालुंडी ट्रेन हादसे और अन्य मुसीबतों के दौरान भी ऐसा ही दिखा।

जब किसी जिले में आपसी मदद के आम तौर-तरीकों को शक की नजर से देखा जाता है, तो सामाजिक पूंजी कमजोर हो जाती है। मलप्पुरम की असली कहानी कहीं और है। यह उस नारियल के पेड़ में है, जिसे नहीं काटा गया। उस मस्जिद में है जिसे कंक्रीट से दोबारा बनाया गया। उस दलित महिला में है जो मुस्लिम लीग के टिकट पर वाइस-प्रेसिडेंट चुनी गई। उस मंदिर में है जो बिना प्रचारित किए इफ्तार कराता है। उस चावल के बोरे में है जो मस्जिद में एक ईसाई महिला को दिया जाता है। ■

योगी कैसे बन गए बाबा गोरखनाथ के वारिस?

जिन बुराइयों के उन्मूलन के लिए गोरखनाथ जूझते रहे, उनके लिए सहिष्णु बने हैं आदित्यनाथ, जबकि वे बुराइयां आज भी बनी हैं बड़ी चुनौती

कृष्ण प्रताप सिंह

किसी भी सच्चे लोकतंत्र में सत्ताधीशों से अपेक्षा की जाती है कि वह अपनी शक्तियों का ऐसा विवेकपूर्ण उपयोग करें कि उनका शासन उन मतदाताओं को भी अपना लगे, जिन्होंने चुनाव में उनको वोट नहीं दिए, ताकि न उनमें अविश्वास पनपे और न वे स्वयं को उपेक्षित या तिरस्कृत महसूस करें। लेकिन कई बार उनसे कर्तव्य का पालन संभव नहीं हो पाता और वे वजह-बेवजह नए-नए मोर्चे खोलते रहते हैं।

उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ ने इन दिनों जिस तरह स्वयं को ज्योतिष पीठ के शंकराचार्य स्वामी अविमुक्तेश्वरानंद सरस्वती से नाहक उलझा रखा है, उसे कुल मिलाकर इसी रूप में देखा जा सकता है। लेकिन पहले तो उन्होंने ऐसा करने का कर्तव्य नहीं निभाया, फिर प्रयागराज के माघ मेले के दौरान स्नान के लिए जा रहे स्वामी अविमुक्तेश्वरानंद की पालकी रोकने, उनके शिष्य बटुकों की चोटी खींचकर घसीटने एवं पीटने और स्वामी से शंकराचार्य होने का प्रमाण मानकर अपमानित करने के सिलसिले में उत्तर प्रदेश विधान सभा तक में (जहां स्वामी अपना बचाव नहीं कर सकते थे) उनके शंकराचार्यत्व पर सवाल उठाने पर उतर आए तो स्वामी ने भी नहले पर दहला की तर्ज पर प्रत्युत्तर देने से परहेज नहीं किया।

जिन बाबा गोरखनाथ की पीठ के योगी अधीश्वर हैं, उनके उपदेशों के संदर्भ देकर स्वामी ने यह तक कह डाला कि चूंकि सत्ता भोग के लिए योगी ने उनके सुविचारित पथ को त्याग दिया है, इसलिए 'योगी' और 'हिन्दू' कहलाने के पात्र नहीं रह गए हैं।

स्वामी के अनुसार, बाबा गोरखनाथ ने 'गोरखवाणी' में साफ कहा है कि कोई राजा चाहे तो गद्दी छोड़कर योगी बन सकता है, लेकिन किसी योगी को राजा की गद्दी पर बैठने की तो छोड़िए, राजा के दरवाजे तक भी नहीं जाना चाहिए। उनकी पीठ के अधीश्वर होने के बावजूद योगी उनकी इस मान्यता के विपरीत पिछले नौ साल से मुख्यमंत्री यानी 'राजा' बनकर न सिर्फ उनकी शिक्षाओं को ठुकरा, बल्कि उनकी पवित्र गद्दी को लज्जित कर रहे हैं।

प्रत्युत्तर में स्वामी ने यह भी कहा कि केवल गेरुआ वस्त्र पहनने या कान फड़वाने से कोई साधु नहीं हो जाता। यह याद दिलाते हुए कि बाबा गोरखनाथ की गद्दी गौ माता की रक्षा के लिए जानी जाती रही है, योगी को चुनौती भी दी कि इस गद्दी के वारिस के तौर पर 40 दिन के भीतर गौ मांस के निर्यात पर रोक लगाकर अपने हिन्दू होने का प्रमाण दें।

ईद और होली और अली एवं बजरंग बली में भेदकर उनको एक दूसरे के विरुद्ध खड़ा करने की योगी की संकीर्ण, कट्टर हिन्दुत्ववादी और मुस्लिम विरोधी रीति नीति के विपरीत बाबा गोरखनाथ अपनी एक सबदी में यह भी कह गए हैं : हिन्दू ध्यावै देहुरा, मुसलमान मसीत, जोगी ध्यावै परमपद जहां देहुरा न मसीत। अर्थ यह कि योगी परम पद का ध्यान करता है, न कि मंदिर मस्जिद का। इसके अतिरिक्त उन्होंने भेदभाव न करने, मीठा बोलने और शांत रहने की नसीहत भी दी है: मन में रहिणां, भेद न अभिमान, बोलियां अमृत वाणी। इसीलिए देश के विभिन्न धर्मों और समाजों में भी उतने ही समादृत हैं जितने साहित्य में। उनको भारतीय साहित्य के निर्माताओं में तो शामिल किया ही जाता है, हठयोग परंपरा का प्रवर्तक, मत्स्येन्द्रनाथ का मानसपुत्र और भगवान शिव का अवतार भी माना जाता है।

आमतौर पर उन्हें उदारचेता और कर्मठ संगठनकर्ता, समाजोद्धारक, लोकरक्षक और योग साधना के विशिष्ट पुरस्कर्ता महासिद्ध संत के रूप में जाना जाता है। एक किंवदंती कहती है कि उन्होंने समय-समय पर कुल चार अवतार लिए। सतयुग में पेशावर में, त्रेता में गोरखपुर में, द्वापर में द्वारिका में और कलिकाल में काठियावाड़ की गोरखमढ़ी में। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने बिना किसी राग या द्वेष के अपने समय में प्रचलित समस्त साधना मार्गों से उचित भाव ग्रहण किया, जबकि योगी आदित्यनाथ उनके ऐसे वारिस हैं कि उनका राग द्वेष के बगैर एक पल भी काम ही नहीं चलता।

ओशो (आचार्य रजनीश) तो बाबा गोरखनाथ को कृष्ण, पतंजलि और बुद्ध के साथ भारत के चार दिशावाहकों में से गिनते हैं। एक बार उन्होंने हिन्दी के महाकवि सुमित्रानन्दन पंत को बताया था, 'जैसे चार दिशाएं हैं, वैसे ये चार व्यक्तित्व हैं। जैसे काल और क्षेत्र के चार आयाम हैं, वैसे ये चार हैं। जैसे परमात्मा की हमने चार भुजाएं सोची हैं, वैसे ही ये चार भुजाएं हैं।'

उनकी मानें तो गोरखनाथ से इस देश में एक नए प्रकार के धर्म का जन्म हुआ। उनके बिना न तो कबीर हो सकते थे, न नानक, न दादू, न वाजिद, न फरीद, न मीरा। इन सबके मौलिक आधार गोरख में हैं और भारत की सारी संत-परंपरा गोरख की ऋणी है। जैसे पतंजलि के बिना भारत में योग की कोई संभावना न रह जायेगी, जैसे बुद्ध के बिना ध्यान की आधारशिला उखड़ जायेगी, जैसे कृष्ण के बिना प्रेम की अभिव्यक्ति को मार्ग न मिलेगा, वैसे ही गोरख के बिना उस परम सत्य को पाने के लिये विधियों की जो तलाश शुरू हुई, साधना की जो व्यवस्था बनी, वह न बन सकेगी।... उन्होंने मनुष्य की अंतरतम की खोज की इतनी विधियां दीं कि उनके हिसाब से वह सबसे बड़े आविष्कारक हैं।

यहां स्मरण रखना चाहिए कि उनके समय में देश की धार्मिक और सामाजिक स्थिति जटिल थी। विभिन्न धर्मों और संप्रदायों में 'जितनी गद्दियां, उतने पंथ' की स्थिति थी तो खंडन-मंडन, विघटन और संगठन की प्रवृत्तियां भी कुछ कम नहीं थीं। अच्छी बात यह थी कि समाज में ऊंच-नीच के प्रति विद्रोह और असंतोष भी फैला हुआ था, जिसको उपयुक्त दिशा पाने के लिए किसी ऐसे महापुरुष की प्रतीक्षा थी जो उसी समाज से हो और उसकी 'आदर्श की भूख' शांत कर सके।

यह प्रतीक्षा गोरखनाथ पर आकर समाप्त हुई तो उन्होंने निराश नहीं किया। अपने गुणों, नैतिकताओं और शक्तियों के समन्वय को कार्यरूप में परिणत करके उन्होंने बिखरे हुए बारह पंथों को संगठित किया, जिनमें छह उनके द्वारा ही प्रवर्तित थे, जबकि छह अन्य शिव द्वारा। एक बड़ा कदम उठाकर उन्होंने वर्णाश्रम व्यवस्था के भेद-विभेदों, यौगिक सिद्धियों के जनपीड़क रूपों और भांग, मद्य एवं मांस को नकार दिया। साथ ही, नारी के केवल मातृरूप की पूजा पर जोर दिया और जीवन के लिए ब्रह्मचर्य और संयम के साथ उद्वेगरहित मार्ग को उचित बताया।

गोरखनाथ ने कहा था, मैं पृथ्वी पर सोता हूं। मेरे पास बिस्तर नहीं ओढ़ावन नहीं। कंकड़ पत्थरों पर सोता हूं और बियाबान में रहता हूं। योगी तो निर्धन होते हैं। उनके पास धन नहीं होता और सबसे बड़ी बात कि उनका किसी से वैर नहीं होता। गोरखनाथ ने तत्कालीन समाज में फैली कुरीतियों और अंधविश्वासों का जैसा भरपूर विरोध किया, मुख्यमंत्री के रूप में योगी उसका दसवां हिस्सा भी करते तो उत्तर प्रदेश का बहुत भला होता। विडंबना यह कि इनमें जिन तीन बुराइयों के उन्मूलन को बाबा गोरखनाथ ने सबसे ऊपर रखा -अंधविश्वास, सामाजिक कुरीतियां और रूढ़िवाद- उनके प्रति योगी आदित्यनाथ इस सीमा तक सहिष्णु हैं कि उनको यह बात शायद ही कभी खलती हो कि ये तीनों आज भी चुनौती बने हुए हैं।

बाबा गोरखनाथ को इसका भान था कि ये तीनों आसानी से उन्मूलित नहीं होने वाले, इसलिए वह 'समाज' की उन दिनों प्रचलित असामाजिक धारणा को नहीं मानते थे और उसे बदलना चाहते थे। उनके पंथ में गुरु का स्थान सबसे ऊंचा है, लेकिन गुरु वह है जो ज्यादा जानता है और अवधूत है, न कि वह जो जाति, वर्ण और वंश वगैरह के आधार पर गुरु की गद्दी चाहता है या उस पर आसीन है और गुणमय वर्ण एवं गुणमय आश्रम का अभिमानी है। इसी तरह नाथ वह है, जो वर्णाश्रम धर्म से परे है और समस्त गुरुओं का साक्षात गुरु है। न उससे कोई बड़ा है और न बराबर।

सोचिए जरा, क्या योगी आदित्यनाथ की निगाह में भी इन सबका रूप यही है? अगर नहीं तो वह बाबा गोरखनाथ के कैसे वारिस हैं? ■

अनदेखी योगी आदित्यनाथ शायद ही बाबा गोरखनाथ के किसी सिद्धांत को मानते हों

बाबा गोरखनाथ ने तत्कालीन समाज में फैली कुरीतियों और अंधविश्वासों का जैसा पुरजोर विरोध किया, मुख्यमंत्री के रूप में योगी उसका दसवां हिस्सा भी करते, तो उत्तर प्रदेश का बहुत भला होता

हमारा लोकतंत्र अर्थ, संदर्भ और मिज़ाज में भारतीय

हमारा लोकतंत्र गण, सभा, समिति और परिषद में पल्लवित है। इनके अर्थ भी हमारी लोक संस्कृति का हिस्सा हैं

योगेन्द्र यादव

गणराज्य के स्वधर्म की शिनाख्त करती हुई इस श्रृंखला में हम तीसरे सूत्र यानी लोकतंत्र की चर्चा करेंगे। सेकुलरवाद और समाजवाद की तरह लोकतंत्र के बारे में भी यही मान्यता है कि यह एक आधुनिक पश्चिमी विचार है। लेकिन अपने खांटी भारतीय अर्थ, संदर्भ और मिजाज में लोकतंत्र भारत गणराज्य का स्वधर्म है। यहां सवाल यह नहीं है कि हमने पश्चिमी लोकतंत्र से कुछ अपनाया है या नहीं। सवाल यह है कि जिसे हम लोकतंत्र कहते हैं उसकी जड़ें क्या सिर्फ आधुनिक काल में और सिर्फ पश्चिमी लोकतंत्र से सीखे तौर-तरीकों में हैं।

इस खोज की शुरुआत प्राचीन भारतीय गणतंत्र से करनी होगी। इसलिए नहीं कि भारत गणराज्य का कोई तार सीधे वैशाली या लिच्छवी गणतंत्र से जुड़ा है। इन प्राचीन गणराज्यों से हमारा रिश्ता कुछ वैसा ही है जैसा आज के यूरोप का एथेंस और स्पार्टा के नगर-राज्यों से। यानी कि रिश्ता सीधा नहीं बल्कि इतिहास की तलहटी में रची बसी स्मृतियों के माध्यम से है। आधुनिक गणराज्य को भले ही प्राचीन गण का संस्थागत ढांचा विरासत में नहीं मिला, लेकिन उसमें गण की अवधारणा, उसकी शब्दावली और उसके प्रतीक जरूर घुल-मिल गए। प्राचीन भारत के गणतांत्रिक राज्य ईसा पूर्व पांचवीं और चौथी सदी में उभरे थे, ठीक उसी समय जब एथेंस में लोकतंत्र का जन्म हुआ था। इन दोनों को आधुनिक अर्थ में लोकतंत्र नहीं कहा जा सकता। लेकिन उत्तर भारत के इन कबीलाई गणतांत्रिक राज्यों में वैसे अनेक तत्व मौजूद थे जिन्हें लोकतंत्र की बुनियाद कहा जा सकता है — एक संप्रभु राजा की जगह एक समूह द्वारा राज, साझी संप्रभुता, आम सभा में और आम सहमति से निर्णय और जरूरत हो तो मतदान की प्रक्रिया। गण, सभा, समिति, परिषद — अगर हमारा लोकतंत्र आज भी इन शब्दों से पल्लवित है तो इनके अर्थ भी कहीं न कहीं हमारी लोक संस्कृति का हिस्सा हैं।

प्राचीन भारत की विरासत को हमारे गणतंत्र से जोड़ने का काम विनय की अवधारणा करती है। आजकल हम विनय का प्रयोग नम्रता और अनुनय के अर्थ में करते हैं। पूर्व वैदिक और वैदिक काल में भी विनय को एक विद्यार्थी के व्यक्तिगत शील का अंग समझा गया — शालीनता, शिष्टता, संयम और गुरुजन का आदर। लेकिन गौतम बुद्ध ने विनय की व्याख्या नैतिक अनुशासन की आचार संहिता के रूप में की। पहले मौखिक और फिर लिखित रूप में विनयपिटक ने संघ से जुड़ने वाले सभी बौद्ध भिक्षुकों के आचार व्यवहार को मर्यादित करने के लिए एक विस्तृत संहिता बनाई। बौद्ध संघ की विनयपिटक ने उस जमाने के गणतंत्रों की अलिखित नियमावली को लिपिबद्ध कर दिया। यह आचार संहिता भिक्षुओं के व्यक्तिगत आचार व्यवहार और एक धार्मिक संगठन के आंतरिक अनुशासन के लिए बनी थी, किसी राजनीतिक समुदाय के लिए नहीं। लेकिन एक मायने में विनयपिटक भारत का पहला लिखित संविधान है। गौरतलब है कि संघ की निर्णय प्रक्रिया में ऊंच-नीच के लिए कोई जगह नहीं है। संघ में आने के बाद अमीर-गरीब या जाति का कोई मतलब नहीं है। हर भिक्षु का एक मत है — वरिष्ठ हो या कनिष्ठ, पुरुष हो या महिला। संघ का सामूहिक निर्णय सर्वोच्च है। विनयपिटक की यह परंपरा बौद्ध धर्म के साथ विलुप्त नहीं हो गई। कालांतर में जैन, शैव, वैष्णव सहित अनेक संप्रदायों ने इस खांचे का इस्तेमाल किया और धर्मशास्त्र के जरिये यह सामूहिक जीवन के बारे में हमारी सोच का हिस्सा बन गया। आज यह भाषा हमारे लिए अपरिचित है, लेकिन आम राय से पंचायती फैसले लेने की मर्यादा कहीं न कहीं विनयपिटक से जुड़ी है।

सल्तनत और मुगल राज ने इस सोच में एक नया आयाम जोड़ा। जाहिर है बादशाह के राज में लोकतांत्रिक संस्थाओं और प्रक्रियाओं की कोई जगह नहीं थी। लेकिन सूफी संतों की सीख के चलते भारत में इस्लाम की राजनीतिक भाषा में बदलाव आया। यहां अदल् यानी न्याय और मसलह यानी कल्याण की अवधारणा में हुए बदलाव महत्वपूर्ण हैं। राजा का राज सिर्फ उसके खानदान या युद्ध में विजय के आधार पर वैध नहीं ठहराया जा सकता। बादशाह तभी ज़िल्ल-ए-इलाही (अल्लाह की परछाईं) कहलाएगा अगर वह प्रजा का नैतिक अभिभावक बने, खुद उसके व्यक्तित्व में न्याय झलके (तज़किया), वह शालीनता और संयम का व्यवहार करे, ज़ुल्म न करे और कमजोर लोगों की रक्षा (रैयत-परवरी) करे। बादशाह की वैधता इस पर भी निर्भर करती है कि वह बिना किसी धार्मिक भेदभाव के अपनी समस्त प्रजा का कल्याण करे, उनकी खिदमत करे। राजशाही की वैधता को स्थापित सिद्धांतों की बजाय अदल् और मसलह से जोड़ना सिर्फ एक नैतिक उपदेश नहीं था। यह शासक को मर्यादा से बांधने का एक बड़ा कदम था।

भारत में लोकतंत्र की आधुनिक भाषा यूरोप से आई। लेकिन उसे भारत ने अपने तरीके से अपनाया और उसकी अपनी इबारत विकसित की। नतीजतन भारतीय लोकतंत्र किसी बनी-बनाई लीक पर नहीं चला। लोकतंत्र का पौधा उस परिवेश में फला-फूला जिसमें लोकतंत्र की गुंजाइश नहीं बताई जाती थी। भारतीय लोकतंत्र ने उन तमाम संकटों को झेला जिससे अमूमन तीसरी दुनिया के लोकतंत्र उबर नहीं पाते थे। इसलिए भारतीय लोकतंत्र ने लोकतंत्र के विचार का लोकतांत्रीकरण कर एक वैश्विक व्यवस्था बनाने में योगदान दिया। हमारे यहां लोकतंत्र किसी राजशाही या तानाशाही के विरुद्ध संघर्ष से नहीं आया। हमारा मुख्य आंदोलन देश की आजादी का था। उसकी सफलता से लोकतंत्र अपने आप हासिल हो गया। संविधान ने पश्चिम के उदारवादी लोकतंत्र का पूरा तंत्र बना दिया। लेकिन उस तंत्र में प्राण फूंकना संविधान के बस की बात नहीं होती।

जनमानस का मिजाज संविधान नहीं लिख सकता। इसलिए भारत में लोकतंत्र के प्रयोग ने एक अनूठा रास्ता अपनाया। लोकतंत्र का मतलब था जनता जनार्दन। इसलिए लोकतंत्र के त्यौहारों में जनता की भागीदारी खूब बढ़ी। लेकिन जनता को प्रक्रिया नहीं, परिणाम से मतलब था। लोकतांत्रिक पद्धति से चुने गए शासक को मर्यादित करने की जिम्मेदारी संस्थाओं ने नहीं निभाई। यह काम जनआंदोलनों ने किया। लोकतंत्र का मतलब था बहुमत का राज। एक लंबे समय तक लोकतांत्रिक शासकों ने इसे बहुसंख्यक समुदाय का राज होने से रोके रखा। विविध भाषाओं और क्षेत्रों का सम्मान किया। भारत लोकतंत्र और विविधता के सामंजस्य का एक मॉडल बना। लेकिन एक वक्त इसमें अल्पसंख्यक के अधिकार की चिंता दब गई। बहुमतवादी लोकतंत्र का उदय हुआ। ■

उपलब्धि भारत लोकतंत्र और विविधता के सामंजस्य का मॉडल

भारतीय लोकतंत्र ने उन तमाम संकटों को झेला जिससे अमूमन तीसरी दुनिया के लोकतंत्र उबर नहीं पाते थे। इसलिए भारतीय लोकतंत्र ने लोकतंत्र के विचार का लोकतांत्रीकरण कर एक वैश्विक व्यवस्था बनाने में योगदान दिया

योगेन्द्र यादव की नई पुस्तक "गणराज्य का स्वधर्म" (सेतु प्रकाशन) से उद्धृत और संपादित अंश।

Published Date 22 February, 2026 (Sunday), Posted at LPC Delhi RMS, Delhi-06, Posting Days Friday and Saturday

पंजाब की मिट्टी और खेल कबड्डी

सर्कल-स्टाइल कबड्डी न सिर्फ सामुदायिक खेल के रूप में फल-फूल रहा है, ग्रामीण युवाओं को आजीविका के साथ सामाजिक प्रतिष्ठा भी दिला रहा है

सौरभ दुग्गल

"कौडी, कौडी, कौडी, कबड्डी, कबड्डी, कबड्डी...."

मिट्टी के घेरे के भीतर- जहां रेडरों और स्टॉपरों के बीच जंग चल रही थी, खिलाड़ियों की आवाजें लगातार तेज होती जा रही थीं। यह दृश्य 2020-2021 के किसान आंदोलन के दौरान दिल्ली के बाहर सिंघु और टिकरी बॉर्डर का था। कबड्डी की कमेंट्री प्रतिरोध के नारों और भाषणों में घुल-मिल गई थी। तीन कृषि कानूनों की वापसी तक लाखों किसान और खेत मजदूर यहां डटे रहे।

सितंबर 2021 में एक हफ्ते तक चले टूर्नामेंट के अंत में एक नया खिलाड़ी उभरा- हरियाणा के रोहतक का शीलू बल्हारा। आगे चलकर वह पंजाब के कबड्डी सितारों के उस लीग में शामिल हो गया, जहां कम आय और हाशिये के समुदायों से आने वाले युवा आर्थिक मजबूती पा रहे हैं।

सर्कल-स्टाइल कबड्डी पंजाब के गांवों में लड़कों द्वारा सबसे पहले अपनाए जाने वाले खेलों में से एक है। इसकी लोकप्रियता इसकी सादगी में है; इस खेल में किसी उपकरण की जरूरत नहीं- यहां तक कि अक्सर खिलाड़ी जूते तक नहीं पहनते। खेल के नियम सरल हैं और इसे मिट्टी पर खेला जाता है। यह खेल जिसे पंजाब-स्टाइल कबड्डी भी कहा जाता है, मेलों, सामुदायिक आयोजनों और स्थानीय टूर्नामेंटों में खेला जाता है।

*

बाहू अकबरपुर गांव के सीमांत किसान के बेटे शीलू बल्हारा 2025 में टोरंटो स्थित यूनाइटेड ब्रैम्पटन कबड्डी क्लब के सबसे अधिक भुगतान पाने वाले खिलाड़ियों में शामिल थे। तीन महीने के अनुबंध में स्टार खिलाड़ियों को 50 से 70 लाख रुपये तक मिलते हैं। टॉप स्टॉपर के रूप में वह अब तक एक दर्जन से अधिक ट्रैक्टर भी जीत चुके हैं।

बल्हारा की उन्नति उन सैकड़ों युवाओं के सामाजिक और आर्थिक बदलाव को दर्शाती है, जिन्हें कबड्डी ने नई पहचान दी है।

"अगर मैंने कबड्डी नहीं अपनाई होती, तो साइकिल खरीदना भी मुश्किल होता," सोनी सिंह कहते हैं। उनकी कहानी भी इसी राह पर चलती है। पंजाब के मानसा जिले के भादड़ा गांव में दलित परिवार में जन्मे सोनी के पिता खेत मजदूर थे। गांव पर उच्च जाति के जट्ट सिख समुदाय का वर्चस्व है, क्योंकि अधिकतर जमीनों पर उन्हीं का मालिकाना हक है। वह बताते हैं- "परिवार की आमदनी बढ़ाने के लिए मैंने भी दूसरों के खेतों में काम किया। गरीबी से निकलने के लिए सेना में भर्ती होने की उम्मीद थी, लेकिन कबड्डी खेलते समय आंख में लगी चोट के कारण मेडिकल में असफल हो गया"।

चोट के बाद सोनी ने पूरी तरह खेल पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। उनकी प्रतिभा ने परिवार को दो कमरों के घर से गांव के एक बंगले तक पहुंचा दिया।

"कबड्डी ने मुझे सबकुछ दिया- पैसा, शोहरत और सम्मान। आज मेरा पूरा गांव इस बात पर गर्व करता है कि मैं पंजाब और विदेशों में उसका नाम रोशन कर रहा हूं।" 27 वर्षीय सोनी कहते हैं, जिन्हें उनके गांव के नाम पर 'सोनी भादड़ा' कहा जाता है।

सोनी, पंजाब के एनआरआई नकोदर क्लब के लिए खेलते हैं और विदेशों में भी करियर बना चुके हैं। पिछले तीन-चार वर्षों में वह न्यूजीलैंड, ऑस्ट्रेलिया और इंग्लैंड में खेल चुके हैं। कहते हैं- "आज तक मैं 18-20 मोटरसाइकिलें जीत चुका हूं, जिनमें एक हार्ले-डेविडसन भी है।"

'मनी दयालपुर' के नाम से चर्चित मनप्रीत सिंह (25) एक सुरक्षा गार्ड के बेटे हैं। उन्होंने कक्षा 9 के बाद पढ़ाई छोड़ दी और कुछ समय अस्पताल में अटेंडेंट के रूप में काम किया। लेकिन कबड्डी ने उनकी जिंदगी बदल दी। साल 2022 से वह न्यूजीलैंड में चार सीजन, और ऑस्ट्रेलिया और इंग्लैंड में दो-दो सीजन खेल चुके हैं।

मनप्रीत कहते हैं, "मेरा सपना अपने गांव में घर बनाने का है। मैंने पिता से काम छोड़ने को भी कहा है, लेकिन वह अब भी अपनी मेहनत से कमाना चाहते हैं।" उनका गांव दयालपुर (जनगणना 2011 में 'डायलपुर') कपूरथला और जालंधर जिलों में फैला है। सोनी और मनप्रीत, दोनों को विदेश में साइन होने पर तीन महीने के अनुबंध में 15 लाख रुपये मिलते हैं।

साल 2010 से 2016 के बीच, जब शिरोमणि अकाली दल सत्ता में था, पंजाब सरकार ने हर साल कबड्डी विश्व कप आयोजित कर इस खेल को आर्थिक रूप से लाभकारी करियर बना दिया। अनुमान है कि पंजाब में घरेलू टूर्नामेंटों का वार्षिक बजट लगभग 250 करोड़ रुपये है, जबकि विदेशी प्रतियोगिताएं इस बजट में और 150 करोड़ रुपये जोड़ती हैं।

*

साल 1990 से कबड्डी एशियाई खेलों का भी हिस्सा है और प्रो कबड्डी लीग के जरिये यह शहरी घरों तक पहुंची।

सर्कल-स्टाइल कबड्डी आज भी मिट्टी के मैदान पर, 22 मीटर व्यास वाले गोल पिच में खेली जाती है। हर टीम में रेडर और स्टॉपर होते हैं। जब कोई रेडर विरोधी टीम के घेरे में प्रवेश करता है, तो उसे चार स्टॉपरों का सामना करना पड़ता है। जिस स्टॉपर को रेडर सबसे पहले छूता है, उसकी जिम्मेदारी होती है कि वह रेडर को अपने जोन में लौटने से रोके। इसके बाद खेल एक-के-बनाम-एक की होड़ बन जाता है। लेकिन किसी भी तरह का शारीरिक हमला करना निषिद्ध है। हर रेड में यही नियम लागू होता है- चार स्टॉपर मैदान में उतरते हैं। सफल रेड पर रेडर की टीम को एक अंक मिलता है, जबकि असफल रेड पर विरोधी टीम को एक अंक दिया जाता है। आम तौर पर एक टीम में 12 खिलाड़ी होते हैं, हालांकि कुछ ग्रामीण टूर्नामेंटों में खिलाड़ियों की संख्या अलग भी हो सकती है।

कबड्डी की इस शैली को न तो कोई औपचारिक खेल संरचना मिली है और न ही आधिकारिक मान्यता। फिर भी यह समुदाय के सहयोग के दम पर फल-फूल रही है और शायद भारत का एकमात्र ग्रामीण खेल है जो बिना किसी औपचारिक व्यवस्था के न सिर्फ जीवित है, बल्कि हर साल और मजबूत होता जा रहा है।

पंजाब के 12,500 से अधिक गांवों में लगभग हर जगह टूर्नामेंट आयोजित होते हैं. किसान समुदाय धनराशि जुटाता है, जबकि गांव के प्रवासी भारतीय (एनआरआई) अपना उदार सहयोग देते हैं। राज्य में इन टूर्नामेंटों में प्रवेश निःशुल्क होता है, क्योंकि इन्हें खेल से ज्यादा उत्सव माना जाता है। टूर्नामेंट के आकार के अनुसार दर्शकों की संख्या 5,000 से 50,000 तक हो सकती है।

इन प्रतियोगिताओं में पुरस्कार राशि काफी अलग-अलग होती है। एक अच्छे टूर्नामेंट का बजट 10 से 50 लाख रुपये तक हो सकता है, साथ ही कारें, मोटरसाइकिलें, यहां तक कि कंबाइन हार्वेस्टर जैसे इनाम भी दिए जाते हैं। सबसे बड़े टूर्नामेंट नवंबर के बाद आयोजित होते हैं, जब शीर्ष खिलाड़ी विदेशों से लौटते हैं।

*

लेहल खुर्द के 42 वर्षीय बलकार सिंह कहते हैं, "मैंने इस टूर्नामेंट को एक खिलाड़ी के रूप में, दर्शक के रूप में और अब आयोजक - तीनों के रूप में जिया है। कबड्डी पीढ़ियों से पंजाब और पंजाबियों की पहचान रही है। हम इसे देखते, खेलते और कबड्डी सितारों की कहानियां सुनते हुए बड़े हुए हैं।"

*

जहां-जहां पंजाबी प्रवासी बसे हैं, वहां-वहां कबड्डी भी उनके साथ पहुंची- चाहे वह कनाडा हो, अमेरिका, ब्रिटेन या फिर ऑस्ट्रेलिया हो। विदेशों में होने वाले टूर्नामेंट सिर्फ खेल आयोजन नहीं होते, बल्कि सांस्कृतिक मेले होते हैं, जो प्रवासी समुदायों को पंजाब की मिट्टी की धुन से जोड़े रखते हैं।

इंग्लैंड में 1950 के दशक से टूर्नामेंट आयोजित हो रहे हैं, जिनका सीजन मई से अगस्त की शुरुआत तक चलता है। कनाडा में यह जून से सितंबर तक रहता है, जिसके बाद अमेरिका में टूर्नामेंट होते हैं। विदेशों का कैलेंडर मार्च में न्यूजीलैंड से शुरू होता है और अप्रैल में ऑस्ट्रेलिया पहुंचता है। इस वैश्विक विस्तार के कारण सैकड़ों पंजाबी खिलाड़ियों को साल भर रोजगार मिलता है।

ब्रिटेन के सांसद तनमनजीत सिंह ढेसी (47), जिन्हें 'तन ढेसी' के नाम से भी जाना जाता है, कहते हैं, "इंग्लैंड का पंजाबी समुदाय कबड्डी से गहराई से जुड़ा है। यह उनकी संस्कृति और परंपरा का हिस्सा है, और अपनी जड़ों से जुड़े रहने का एक तरीका भी। कबड्डी प्रमोटर कुलवंत संघा, जो करीब 65 साल के हैं, बताते हैं, "पंजाब से आया कोई नया खिलाड़ी भी इंग्लैंड के तीन महीने के सीजन में आसानी से 10 लाख रुपये कमा सकता है, जबकि स्टार खिलाड़ी 40–50 लाख रुपये तक कमा लेते हैं।"

पंजाब के बाहर सबसे बड़ा कबड्डी सर्किट कनाडा में है। कनाडा स्थित प्रमोटर मनजीत सिंह लाली कहते हैं, "हर साल करीब 100 कबड्डी खिलाड़ी पंजाब से कनाडा जाते हैं। एक खिलाड़ी एक सीजन में कम-से-कम 10 लाख रुपये कमाता है, जबकि शीर्ष 10-15 खिलाड़ी 50-70 लाख रुपये तक कमा लेते हैं।"

*

कबड्डी की अर्थव्यवस्था सिर्फ खिलाड़ियों तक सीमित नहीं है; यह कोचों, सहायक स्टाफ और खासकर कमेंटेटरों को भी रोजगार देती है।

संगरूर के 43 वर्षीय सतपाल माही खाडिल, जो पिछले 24 वर्षों से कमेंट्री कर रहे हैं, बताते हैं, "एक कमेंटेटर विदेशों के सीजन में 10-12 लाख रुपये कमा सकता है। देश में प्रति टूर्नामेंट 10,000-20,000 रुपये मिलते हैं।"

सतपाल एक भूमिहीन दलित परिवार से आते हैं। उनके पिता दिहाड़ी मजदूर थे। वह बताते हैं, "मैं भी शायद मजदूर ही बन जाता। लेकिन मुझे रेडियो पर खेल कमेंट्री सुनना और किताबें पढ़ना पसंद था, जिससे मेरी क्षमता निखरी। कबड्डी ने सबकुछ बदल दिया। आज मेरे पास घर है, कार है, और मैं ऑस्ट्रेलिया, इंग्लैंड और कनाडा की यात्राएं कर चुका हूं।"

लेकिन इस सफलता के साथ कुछ कड़वी प्रतिद्वंद्विताएं भी बढ़ी हैं। साल 2022 में, ब्रिटिश-भारतीय खिलाड़ी संदीप नंगल अंबियां (38), जो खेल के शीर्ष सितारों में से एक और नशे के खिलाफ अभियान चलाने वाले थे, की जालंधर के मल्लियां खुर्द में एक टूर्नामेंट के दौरान गोली मारकर हत्या कर दी गई। पुलिस को संदेह है कि यह हत्या कबड्डी की प्रतिद्वंद्विता से जुड़ी थी।

इस खेल का एक और स्याह पक्ष लैंगिक असमानता है। कबड्डी में महिलाओं के लिए अवसर बहुत कम हैं। हालांकि 'मेजर कबड्डी लीग' जो चार संस्थाओं में से एक है, इस कमी को दूर करने की कोशिश कर रही है। वह अपने बैनर तले हर टूर्नामेंट में कम-से-कम एक लड़कियों का मैच शामिल करती है।

*

कुल मिलाकर, कबड्डी ने पंजाब की ग्रामीण धड़कन के रूप में अपनी पहचान को सच साबित किया है।

खिलाड़ियों को लोक-नायक जैसा दर्जा मिलता है और उन्हें गीतों तथा गांव की बैठकों में सराहा जाता है। दिलजीत दोसांझ से लेकर दिवंगत सिद्धू मूसेवाला तक, कई गायकों ने इस खेल को श्रद्धांजलि दी है। बब्बू मान के गीत "कबड्डी कबड्डी"को यूट्यूब पर 1.1 करोड़ से अधिक बार देखा जा चुका है।

फुटबॉलर से कबड्डी प्रमोटर बने टोनी संधू, जो टूर्नामेंट आयोजित करने वाली मेजर कबड्डी लीग के सचिव हैं, कहते हैं कि किसानों से जुड़ा कोई भी मुद्दा हो, कबड्डी खिलाड़ी हमेशा सबसे पहले जिम्मेदारी निभाने वालों में होते हैं।

साल 2010 में हुए पहले कबड्डी विश्व कप में भारत की टीम के कप्तान रहे मंगत सिंह मांगी इस भावना को यूं समझाते हैं: "कबड्डी एक ग्रामीण खेल है, जिसे ग्रामीण युवाओं द्वारा खेला और समुदाय द्वारा संजोया गया है। फिर कबड्डी खिलाड़ी सामाजिक जिम्मेदारियों से दूर कैसे भाग सकते हैं?" जालंधर जिले के बग्गा गांव से आने वाले 41 वर्षीय मांगी, जिन्हें कबड्डी का "राजा" भी कहा जाता है, आगे कहते हैं, "आज मैं जो कुछ भी हूं, कबड्डी और उस समुदाय की वजह से हूं जो इस खेल के साथ खड़ा है।" ■

अनुवाद: प्रभात मिलिंद। साभार: ruralindiaonline.org

फोटो: विशेष व्यवस्था

टूर्नामेंट पंजाब के लगभग सभी गांवों में कबड्डी टूर्नामेंट होते हैं। विदेश में भी मुकाबले खेले जाते हैं

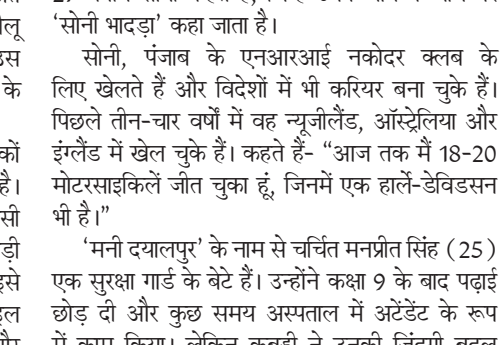

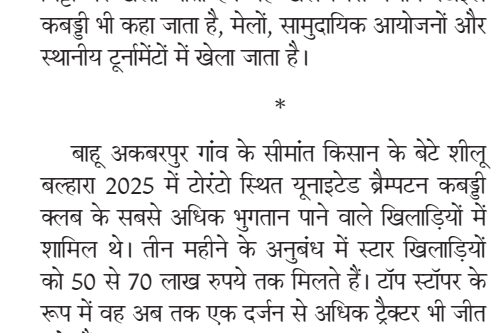

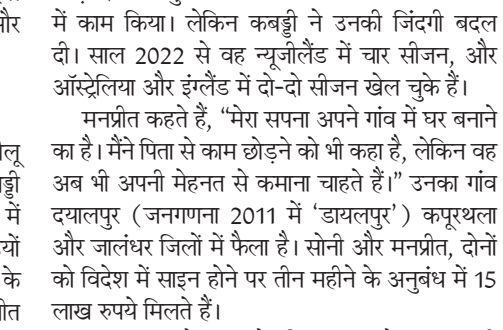

गतिविधियां समुदाय के सहारे फलती-फूलती कबड्डी और जालंधर के रुरका कलां में मैच (ऊपर)। एक टूर्नामेंट के दौरान संगीत प्रस्तुति। कुश्ती स्टार जस्सा पट्टी (बाएं, नारंगी पगड़ी में) कबड्डी खिलाड़ियों के साथ सिंघु बॉर्डर पर फल बांटते हुए

इस खेल का एक और स्याह पक्ष लैंगिक असमानता है। कबड्डी में महिलाओं के लिए अवसर बहुत कम हैं। हालांकि 'मेजर कबड्डी लीग' इस कमी को दूर करने की कोशिश कर रही है। वह अपने बैनर तले हर टूर्नामेंट में लड़कियों का कम-से-कम एक मैच शामिल करती है

Nehru centre

नेहरू सेंटर ऑडिटोरियम

वेस्टर्न एक्सप्रेसवे पर
मुंबई के हृदयस्थल में,
बीकेसी से सटे,
एयरपोर्ट के पास

इन सबके लिए सर्वोत्तम:
- कॉरपोरेट/एचआर मीटिंग, सेमिनार या ट्रेनिंग सेशंस
- व्याख्यान
- बुक लॉन्च/ बुक रीडिंग
- पैनल डिस्कशन
- साहित्यिक/सांस्कृतिक कार्यक्रम

ऑडिटोरियम उपलब्ध है
-पूरा दिन सुबह 10 बजे से शाम 8 बजे
-आधा दिन सुबह 10 बजे से दोपहर 2 बजे या शाम 4 बजे से शाम 8 बजे

बुकिंग के लिए कृपया संपर्क करें: +91 22-26470102, 8482925258
या हमें लिखें: contact@nehrucentre.com
नेहरू सेंटर ऑडिटोरियम, दूसरा फ्लोर, एजेएल हाउस, 608/1ए, प्लॉट नं. 2, एस. नं. 341, पीएफ ऑफिस के पास, बांद्रा, मुंबई- 400051